खरा सोना





लेखक—

जगदीश झा 'विमल'।

सन् १६२१

प्रथमावृत्ति २०००] [मूल्य १)

प्रकाशक—
महादेवप्रसाद झूँझनूवाला,
३१, बड़तल्ला स्ट्रीट,
कलकत्ता।



मुद्रक—
श्रीहृषीकेश घोष,
रुद्रप्रिंटिंग वर्क
७, गौरमोहन मुखर्जी स्ट्री
कलकत्ता।

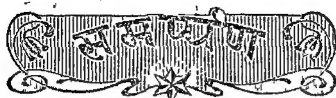
प्रेमोपहार

दो शब्द।

आजकल हिन्दीके साहित्य-स्रोतकी गति विलक्षणरूपसे सामयिकताके पथपर अग्रसर हो रही है। पाठक-समुदाय विरह-व्यथाओंकी कथाओंको नफरतकी निगाहसे देख, राजनीति और समाजनीतिके उपन्यास खोजने लग गया है और वह भी मौलिक। ऐसी अवस्थामें प्रकाशकोंकी इच्छाका थोडे ही परिश्रमसे पूर्ण होजाना नितान्त असम्भव कार्य्य है। क्योंकि वर्त्तमान हिन्दी लेखकोंमें अधिकांश अभीतक अनुवादके ही पचडेमें पडे हुए हैं। आजकल मौलिक, फिर सामयिक विषयोंपर लिखी गयी मौलिक पुस्तकें वहुत ही कम देखनेमें आती हैं। ऐसी अवस्थामें हिन्दीके उदीयमान लेखक विमल-जीने हमें अपनी यह स्वतन्त्र रचना देकर अत्यन्त सन्तोष-प्रदान किया है, क्योंकि इसमें हमारी रुचिके अनुसार राजनीति और समाजनीतिका यथेष्ट समावेश है। यही कारण है, जो आज हम अपने प्रेमी पाठकोंको यह भेंट देते हुए प्रसन्नताके मारे फूले न समा रहे हैं। आशा है, पाठकगण इसे पढकर हमारी ही भाँति प्रसन्न होंगे और लेखकके परिश्रमको सार्थक करेंगे।

अन्तमें हम मनोरञ्जन-सम्पादक पण्डित ईश्वरीप्रसादजी शर्मा और पण्डित नरोत्तम व्यासको परम धन्यवाद देते हैं, जिन्होंने क्रमश: इसकी भूमिका लिख और प्रूफ संशोधनकर हमारे इस अनुष्ठानमें हमें पूर्ण सहायता दी।

—महादेवप्रसाद झुंझनूवाला।



खरे और खोटेके अपूर्व एवम् निर्भीक परीक्षक,

परम धार्मिक, समाज-सुधारमें अग्रगण्य,

श्रद्धास्पद श्रीविलासराय जी डालमियां

महोदय

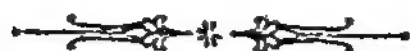
के

करकमलोंमें प्रकाशककी यह भेंट,

प्रेम और श्रद्धाके साथ सादर समर्पित है।

—महादेव प्रसाद।

हमारी प्रकाशित पुस्तकें।



१। रालेट-ऐक्ट—मूल्य—२॥)

इस पुस्तकमें उसी काले कानूनकी कथा है, जो पंजाबके हत्याकांड और असहयोग-आन्दोलनका जनक है। बड़े बड़े राजनीतिक नेताओंके विचार पढने योग्य हैं। सुनहरी जिल्द बँधी हुई है

२। सुवर्ण-प्रतिमा—मूल्य २॥)

यह एक सुप्रसिद्ध शिक्षाप्रद बंगला उपन्यासका हिन्दी अनुवाद है। सब विद्वानों और पत्रोंने प्रशंसा की है। बडाही मनोरञ्जक है।

३। लोकमान्य तिलक—मूल्य १) सजिल्द १॥)

लोकमान्य तिलककी ऐसी अपूर्व जीवनी अभीतक कहीं न निकली। दो सस्करण होचुके हैं। कई चित्र भी दिये गये हैं।

अन्यान्य पुस्तकोंके लिये बडा सूचीपत्र मगा देखिये।



विहारमें हिन्दीभाषाकी प्रधानता होनेपर भी लेखकोंका दुर्भिक्षसा है। जो लिखते भी हैं, उन्हें 'विहारी लेखक' कहकर अन्य प्रान्तोंके निवासी हिन्दीभाषी कुछ उपेक्षाकी दृष्टिसे देखते हैं। साथ ही विहारमें अन्य प्रकाशकोंका बडा भारी अभाव होनेके कारण विहारी लेखकोंको वाहरी प्रकाशकोंका ही मुँह जोहना पडता है, इस लिये भी हमारे यहाँ लेखक बढने नही पाते। इन सब कारणोंके होते हुए भी जो लोग पुस्तकें लिखते जाते और विहारकी ओरसे मातृमन्दिरमें पुष्पाञ्जलि चढाते जाते हैं, उनके सत्साहसकी हम प्रशंसा करते हैं। ऐसेही लोगोंमें असरगञ्ज जिला मुंगेरके प० जगदीश झा 'विमल' भी हैं। आप हिन्दीके होनहार लेखक हैं और इधर कई वर्षो से धडल्लेके साथ पद्य और पुस्तकें लिखते जाते हैं। यदि यही क्रम आपने कुछ दिनोंतक जारी रखा, तो हमें पूरी आशा है, कि आप हिन्दीके लेखक समुदायमें एक अच्छा स्थान ग्रहण कर लेंगे।

'खरा सोना' आपकी हालकी रचना है। हमें इसकी

कापी देखनेको मिली थी। उसे पढ़कर हमने जहाँतक देखा, उससे हमें यह पुस्तक अच्छी, शिक्षाप्रद और सामयिक मालूम पडी। यद्यपि उपन्यासोंके गुण दोपका विवेचन करनेवाले पाठकों और समालोचकोंको इसमें एक उत्तम उपन्यास-लेखकके अनुरूप चरित्र-चित्रण और मानव-हृदयके अन्तर्गत भावोंके विल "ण विश्लेपणको कुछ कसर दिखाई देगी, पर इसमें सन्देह नही, कि लेखकके भाव शुद्ध और उद्देश्य पवित्र हैं। इसकी कहानीपर सामयिकताका रंग चढाकर आपने अपनी देशभक्ति और कालज्ञानका अच्छा परिचय दिया है। देश-सेवा, समाज-सेवा, स्वावलम्बन, परार्थ-साधनके भाव इसके विविध पात्रों द्वारा भली भाँति झलकाये गये हैं। इसीसे यह पुस्तक बड़े-छोटे सबको निसङ्कोच पढनेके लिये दी जा सकती है। लिखनेका ढग अच्छा और भाषा सुन्दर है। प्रकाशकने इसे छापकर हिन्दीमें एक अच्छी पुस्तककी सख्या बढ़ायी, यह देख, हम सुखी हुए हैं।

आशा है, कि अनतिदूर-भविष्यत्में हमारे प्रिय 'विमल जा' हिन्दीमें अनेक उत्तमोत्तम मौलिक उपन्यासोंकी रचना कर डाले गे।

कलकत्ता,
मार्गशीर्प शुक्ला २ सं० १९७८। } ईश्वरीप्रसाद शर्मा।

खरा सोना।

पहला परिच्छेद



रका समय था। सुरसरिकी सुभग धारा स्वच्छन्दतापूर्वक कलकल करती हुई प्रवाहित हो रही थी। अनेक प्रकारके जल विहङ्गोंके कलरवमें अपूर्व आनन्दका अनुभव होता था। किनारेके सघन वृक्षोंपर चिडियोंकी सुन्दर सुरीली ध्वनि पथिकोंके चित्तको उसके स्वातन्त्र्य सुखकी ओर आकृष्ट करती थी। ऐसे ही मनो-मोहक समयमें एक नवयुवक गङ्गाके किनारे एक पत्थरकी



चट्टानपर बैठा हुआ उन दृश्योंको निर्निमेष नयनोंसे देख रहा था। भगवान् भुवन-भास्करके उदय होनेसे पहले ही समीपवर्ती नगरोंके स्त्रीपुरुष अपने अपने हाथोंमें जलपात्र और धोती लिये स्नानके लिये आने लगे। सूर्योदय होनेतक उस घाटपर स्नान करनेवाले स्त्री पुरुषोंकी संख्या हजारोंके लगभग हो गयी। स्त्री और पुरुषोंके स्नान करनेके घाट अलग अलग बने हुए थे। स्त्रियोंके स्नान करनेका घाट पुरुषोंके घाटसे सौ गज़की दूरी-पर पच्छमकी ओर था। लोग स्नानकर अपने-अपने जलपात्रों-को साफकर उसमें पानी भर अपने-अपने घरको लौट रहे थे। कोई आ और कोई जा रहा था। कोई सुरसरिके विमल सलिलमें आनन्द से तैर रहा था। कोई हाथ पैरोंका मैल साफ करता था तो कोई "हरगंगा"की आवाज लगाता हुआ गोता मारता था। कोई जाप करता था, तो कोई भगवान् भास्करको जलका अर्घ्य दे रहा था। चट्टानपर बैठा हुआ युवक इन दृश्योंको देख अपनेको बिलकुल ही भूल सा गया और प्रतिमाकी भाँति टकटकी लगाये उसी ओर देखता रह गया।

धीरेधीरे स्नान करने वाले स्त्री पुरुषोंकी भीड छँटी। सरिताके वक्षस्थलपर अनेक छोटी बड़ी डोंगियाँ और नौकायें अठखेलियाँ करती हुई इधरसे उधर आती-जाती दिखाई देने लगी। घाटके स्वामी भी घाटपर बने हुए अपने छोटे बँगलेके बाहर चौकीपर आ डटे। गंगापार जानेवाले यात्रियोंको खेवा देकर टिकट लेनेकी सूचना दी गयी।

यात्रीगण अपने-अपने टिकटके लिये आगे बढे । देखते ही देखते घाट-स्वामीके निकट भारी भीड लग गयी । उचित किराया देकर सबने अपना अपना टिकट ख़रीदा । उनको पार उतारने वाली नौका भी किनारे आ लगी । एक एककर यात्रीगण उसपर सवार होने लगे । ज्योंहीं चट्टानपर बैठे हुए युवककी दृष्टि उस ओर मुडी, त्योंही उसको अपने कार्यका स्मरण हो आया। युवकने भी शीघ्रतापूर्वक टिकट खरीदा और अपनी छोटीसी गठरी सँभाल, नावपर जा बैठा । धीरे-धीरे यात्रियोंकी सख्या बढती गयी और थोडा ही देरमें नाव भर गयी । मल्लाहोंने नाव खोलनेका यत्न किया । गङ्गामें डाला हुआ नावका लङ्गर उठाया गया । एक मल्लाहने नावको बाँसके सहारे किनारेसे हटाकर आगे बढाया और दूसरेने पतवारको घुमाकर नावका मुँह फेरा । साथही दो मल्लाहोंने डाँड खेना आरम्भ कर दिया । एकसाथ ही अनेक यात्रियोंने "जय गङ्गामैयाकी" आवाज की । देखते ही देखते नाव किनारेसे धाराको काटती हुई आगे बढी । किनारेपरके घर, द्वार वृक्ष और चट्टानें हटती हुई दिखाई देने लगीं । यात्रियोंको शीघ्रतासे कुशल-पूर्वक गङ्गापार हो जानेकी चिन्ता थी , किन्तु उस चट्टानवाले युवकके मनमें कुछ और ही विचार उत्पन्न हो रहा था, जिसे उसकी मुखाकृति ही प्रकट किये देती थी । उसके मुखको देखनेसे ही मालूम होजाता था, कि वह किसी गम्भीर विचारमें डूबा हुआ है ।

ठीक बीच धारामें आकर नाव रुक गयी । मल्लाहोंने आज



खेना छोड दिया और लगे यात्रियोंसे अपनी "खरदनी" वसूल करने। जिन यात्रियोंको यह बात मालूम थी, उन्होंने तो मल्लाहके हाथ फैलाते ही दे दिया और जिनकी यह पहली यात्रा थी, उनमेसे भी अनेक लोगोने औरोंको देखा-देखी विना मीन मेख किये ही अनुचित शुल्क चुका दिया, किन्तु जिन बेचारोके पास अधिक पैसे नही थे, वे निरुपाय हो मौनी बने बैठे रहे। मल्लाह उनको झिडकियाँ सुनाने लगे। बेचारे तो भी चुप रहे। उसी समय किसीने उस युवकसे भी किराया माँगा। युवकने कहा,—"अब कैसा किराया ?"

मल्लाह - क्या आपको अभीतक ज्ञात नहीं हुआ, महाराज ?

युवक—नही।

मल्लाह—इन यात्रियोसे पूछिये।

युवक—मैं किसीसे क्यो पूछने लगा ? मैं तुम्हारे स्वामीको उचित किराया देकर टिकट ले चुका हूं।

मल्लाह—चलिये, आप जैसे कितनोसे वसूल किया गया है। यदि अपना भला चाहते हैं, तो दे दे, अन्यथा बलपूर्वक वसूल किया जायेगा।

बलपूर्वक वसूल किये जानेकी बात सुनते ही युवक गम्भीर गर्जन करता हुआ बोला—"मैं किसी प्रकार दुगना, ड्योढा किराया नहीं दे सकता। तुमको जो कुछ करना हो, करो।"

मल्लाह—महाराज, इसमें आधा हिस्सा हमारे मालिकका

भी होता है। इसलिये आप दे दें, अन्यथा आपके हकमें अच्छा नहीं होगा।

युवक—मैं अत्याचारियोंसे डरता नहीं। तुमको जो कुछ करना हो करो।

युवककी इसप्रकार निर्भीकतापूर्ण बाते सुन उन यात्रियोंके हृदयमें भी बलका सञ्चार हुआ, जिनके पास इस अधिक किरायेका पैसा नहीं था और वे भी युवकके साथ देनेको प्रस्तुत हुए, जो इस कुरीतिका मूलोच्छेद करना चाहते थे, किन्तु इने गिने दो-चार यात्री ऐसे भी थे, जो युवकके व्यवहारको, एक दो-पैसेके लिये इस प्रकार बखेडा करना अच्छा नही समझते थे। युवकको इस प्रकार अडा देख मल्लाहोंने नावको बीच धारामें छोड डाँड खेना बन्द कर दिया। नावको दूसरी ओर बहते देख यात्रियोंने मल्लाहोंसे नाव खेनेकी प्रार्थना की। मल्लाहोंने उत्तरमें निवेदनपूर्वक कहा, कि जबतक हमको सबके पैसे नहीं मिलेंगे, तबतक हम नाव नही खे सकते, क्योंकि जब मालिक ये पैसे माँगेंगे, तब हम उन्हें क्या जवाब देंगे? यदि आपलोग नहीं देना चाहते, तो नावको बहने दीजिये। मल्लाहोंकी बातें सुन कई व्यक्तियोंने उन्हें निर्दोषी ठहराकर युवकसे पैसे दे देनेके लिये कहा। इसके उत्तरमें युवकने नम्रता पूर्वक सबसे प्रार्थनाकर कहा—"मैं दोकी जगह चार पैसे देनेको तैयार हूँ, किन्तु इस दूषित प्रथाके अनुसार मैं एक छदाम भी नहीं दे सकता और जबतक हमलोग इसको दूर करनेकी चेष्टा न करेंगे,

तबतक यह दूर नहीं हो सकती। इससे दीन दुःखियोंको बड़ा कष्ट होता है, और इस प्रकारकी छोटी छोटी कुरीतियोंसेही लोगोंका मन बढ़ जाता है, दुर्जनकी प्रवृत्ति धीरे धीरे बढ़ने लगती है, क्योंकि खीरेका चोर ही हीरेका चोर हो जाता है। आप लोग घबरायें नहीं, मैं आज ही इनको इसी मध्य धारमें सदाके लिये प्रवाहित कर दूंगा, फिर कभी कोई 'खुरदनी'का नाम भी न लेगा।" युवककी इन बातोंको सुनकर यात्रियोंके ज्ञाननेत्र खुल गये। सबने युवकका साथ देना स्वीकार किया और उसकी निर्भीकताकी बड़ी प्रशंसा की। मल्लाहोंके हृदयमें भयका सञ्चार हुआ। "इनको इसी मध्यधारमें सदाके लिये प्रवाहित कर दूंगा"—युवककी इस बातका मतलब उनलोगोंने यही समझा, कि ये लोग मिल-जुलकर हमें नदीमें डुबो देंगे, कारण सभी यात्री इसी युवकके पक्षमें हो रहे हैं। यह सोच वे बहुत डर गये और सबके पैसे लौटाकर चुपचाप नाव खेने लगे। नाव धीरे धीरे गङ्गा पारकर उस किनारे जा लगी। यात्रियोंके उतरनेके पहले ही नावसे उतरकर एक मल्लाहने किनारेपर खड़े हुए अपने स्वामीसे सब बातें कह दीं। नावके मालिक बिगड़ते हुए शीघ्रतापूर्वक उस नावके निकट आकर यात्रियोंको रोकने लगे। यात्रियोंने घटवारकी बातोंकी ओर कुछ ध्यान नहीं दिया और सबके सब नावसे नीचे उतर गये। कुछ यात्री तो नावसे उतरते ही अपने-अपने निर्दिष्ट स्थानोंकी ओर चलते बने किन्तु वह युवक कुछ यात्रियोंके साथ घाटसे

कुछ अलग हटकर स्नानादिके प्रबन्धमें लगा। घाटके स्वामीको सब बातें विदित हो गयी थीं अतएव उसने उस समय उस विषयको लेकर उस युवकसे किसीप्रकार छेड़ छाड़ न करनेमेंही अपना कल्याण समझा। युवक स्नानके अनन्तर कुछ भोजनकरके न मालूम किस ओर चला गया। धीरे-धीरे उस दिनकी घटनाका समाचार इधर-उधर फैल गया। यात्रीगण उसी दिनसे खेवाके अतिरिक्त पुरदर्शी प्रभृतिके नामसे एक-दो पैसा देनेमें भी चीचपड़ करने लगे, कोई-कोई उदार कहलानेवाले महापुरुष कुछ दे भी दिया करते थे, किन्तु उसी दिनसे मल्लाह लोग भी सावधान हो गये। बिना तंग किये जो कुछ मिल जाता, वे उसीपर सन्तोष करलेते, क्योंकि घाटके स्वामीने उन्हें ऐसा करनेको मना कर दिया था। उसको भय था कि अब समय बदलता जा रहा है, ऐसे नाजुक समयमें कड़ाईसे काम होनेका नहीं। अब रामराज्यका समय आनेको है—प्रेमके अतिरिक्त दबाव प्रभृतिसे इस नवीन युगमें कार्य नहीं हो सकता। ऐसा सद्विचार होनेपर भी उसका चित्त स्वार्थकी ओरसे नहीं हटा। वह फिर भी किसी युक्तिसे कार्य, साधनेकी चिन्ता करता रहा, पर प्रकटमें उसने किसीपर किसी प्रकारका ज़ोर-जुल्म नहीं किया। उसमें ऐसा परिवर्त्तन होते देख, यात्री विशेष प्रसन्न हो, उस युवककी निर्भीकतापर उसे धन्यवाद देते थे, जिसकी कृपासे यात्रियोंका यह कष्ट दूर हुआ। उस पाषाणहृदय घटवारका हृदय भी मोमसा पिघला हुआ दिखाई देने लगा।

दुनिया दीवानी है। नहीं तो रुपयेके लोभमें पड़कर आदमी, खून आदमीका क्यो चूसता ? पिताको पुत्र क्यो अलग करता ? एकके दुःखपर दूसरा क्यो हंसता, एकका सत्यानाशकर दूसरा अपनी उन्नतिका साधन क्यो करता ? ऐसी अवस्थावाला देश और जाति क्यो न रसातलको जायेंगे, जिस देशवासियोंके घर-घरमें फूटकी जबर्दस्त टांग अड़ी हुई है, वहाके स्वार्थियोंको अपने अभीष्टकी सिद्धिमें कौनसा अड़ङ्गा पड सकता है ? जहाँ वाले अखण्ड मण्डलाकार उन भगवान्की प्राप्तिको ही मोक्षका मार्ग समझते हैं, वहांपर एक धनी मानी घरबारको अपना मतलब पूरा करनेमें कितना विलम्ब लग सकता है ? उसने स्थानीय अधिकारियोंकी पत्र-पुष्पसे पूजा अर्चाकर मन-माना वर पालिया और फिर पूर्ववत् टके सीधे करने लगा।



दूसरा परिच्छेद



गायत्रीने अपनी भाभी सुरभिकी गोदमें उसके नन्हे पुत्र महादेवको देकर कहा—"भाभी! आज न मालूम महादेव मेरी गोदमें क्यों नहीं रहता। मैंने कईबार इसको इधर उधर ले जाकर कई चीजे दिखायीं, किन्तु वह चुप नहीं होता।"

सुरभि—आज लल्लाका जी अच्छा नहीं है वह रातमें भी कईबार रो रो उठा था।

गायत्री—क्या भैयाको ये बातें ज्ञात हैं?

सुरभि—उनको किसने कहा? फिर उन्हे कहकर ही क्या होता? वे कुछ करें तब तो?

गायत्री—वे नहीं करते, तो कौन करता है?

सुरभि—उनको अवकाश भी हो?

गायत्री—अवकाश नहीं रहता, तो करते क्या हैं?

सुरभि—तुम कैसे समझोगी? जो कमाता है वही समझ ताहै। अगर वे कुछ नहीं करते, तो यह मखमली पाटकी साड़ी और दोनों वक्त खानेको कहांसे मिलता है? चुपचाप सेठानीकी तरह भोजन कर हथेली में मेंहदी लगाये रहती हो, तुम्हें क्या मालूम कि वे क्या करते हैं?

भाभीकी बात गायत्रीके हृदयमें जहरीले तीरके समान बिंध गयी। वह अत्यन्त दुःखित हुई, पर कुछ नहीं बोली, चुपचाप उस जगहसे हट गयी। जबसे गायत्रीकी माता मरी तभीसे सुरभि उसको बहुत तंग किया करती थी, किन्तु यह लड़की इतनी सुशीला थी, कि भूल कर भी उसने अपने जेठे भाई और पिताको कभी अपनी बीती नहीं सुनायी। उसके अग्रज, सुरभिके स्वामी, यमुना बाबू अपनी अनुजा सुशीला गायत्री पर सदा वात्सल्यभाव रक्खा करते थे। उनको अपनी धर्मपत्नी सुरभिके उग्र स्वभावने सदा यही शंका बनी रहती थी, कि—वह हमारी अनुजा गायत्रीको अवश्य कष्ट पहुँचाया करेगी, इसीलिये वे बराबर गायत्रीसे पूछताछ करते रहते थे, कि—किसी प्रकारका कष्टतो नहीं होता है? गायत्री उनको सदा यही उत्तर देती कि—मुझे किसी बातका कष्ट नहीं है। आप मेरे लिये कोई चिन्ता न करें। वे गायत्रीके उत्तरसे ही प्रसन्न हो जाते थे। गायत्रीको खाने-पहननेका तो कष्ट था नहीं, हाँ यदि कुछ कष्ट था तो अपनी भाभीके तीर जैसे और व्यङ्गभरे वाक्योंका। इसीसे वह सदा चिन्तित रहा करती थी। सुरभिके वाक्य बाणोंने गायत्रीके कोमल-हृदयपर ऐसी चोट पहुँचायी थी, कि—बेचारी सदैव विह्वल रहती थी। अन्तमें उससे मुक्तिकी कोई युक्ति न देख उसने अपने पतिदेवको पत्र द्वारा सूचना देदी। उसमें सब बातें प्रत्यक्षकरके नहीं लिखी, सिर्फ इतनाही लिख दिया, कि—दासी चरणोंसे अधिककदिन अलग नहीं रह सकेगी। उसको अपने

पत्रका उत्तर पानेमें विलम्ब होते देख और भी चिन्ता होने लगी। एकदिन दिनके बारह बजे गायत्री अपने कमरेमें पलङ्गपर लेटी चिन्तामें मग्न थी। सुरभि अपने पुत्र महादेवको लिये अपने कमरेमें नींद ले रही थी। इसी समय एक सप्तदशवर्षीया नव युवती गायत्रीके कमरेमें आयी। गायत्री चिन्तामें ऐसी लीन थी कि—उसको किसीके कमरेमें आनेकी खबर न हुई। उस नवयुवतीने अपनी बाल्य-सखी गायत्रीको चिन्तित देख मुसकुराते हुए धीरेसे कहा—"बहिन गायत्री! इसप्रकार एकाग्रचित्तसे किसका ध्यान कर रही हो?"

"बहिन गायत्री" यह शब्द सुनते ही गायत्री सम्हल गयी, चिन्ताका भाव छिपाकर हसती हुई उस नवयुवतीके स्वागतके लिये शीघ्र पलगसे उठ खडी हुई और कुछ आगे बढ उसका हाथ पकड बोली,—"बहिन प्रेमा! तू अपने ही समान सबको समझती है जैसे आप रात दिन महावीर बाबूकी चिन्तामें व्यस्त रहती है, वैसा ही सब किसीको समझती है।

प्रेमा—मैं रात दिन उनकी चिन्ता नहीं करती। यदि इसपर भी ऐसा ही समझती हो तो समझो। मैं भी स्वीकार करती हू। यदि उन्हींकी चिन्ता किया करती हू तो कुछ बुरा थोडे ही करती हू, पतिसे बढकर संसारमें दूसरा है कौन? पर यह तो कहो तुम किसका ध्यान करती हो? अगर उनका नहीं तो क्या किसी दूसरेसे प्रेम करती हो?

गायत्री—तुमने तो अच्छा मतलब निकाला। और मुझको



किसीसे प्रेम नहीं है, जब कभी ध्यान करती हू तो उसी दीन दु:ख-भञ्जन करुणामय भगवान्का । क्यों कि जब मे उनकी इस विमल सृष्टिकी ओर दृष्टिपात करती हू, तभी इसकी विचित्रता-को देख मौन हो जाती हू । मुझे इसका भेद कुछ समझमें नही आता, कि उन्होंने जीवनमें श्रेष्ठ मनुष्यको ऐसा स्वार्थी क्यों बनाया ? इससे तो अन्यान्य श्रेणीके जीव ही अच्छे समझे और कहे जा सकते हैं । न मालूम मनुष्य इस नश्वर शरीरको पाकर भी इतना अभिमान क्यों करता है ?

गायत्रीकी बात सुनते ही प्रेमा ताड गयी, कि गायत्रीको सम्भवत सुरभिने कुछ कष्ट पहुँचाया है, इसीसे वह ऐसा कह रही है । क्यों कि इसके प्रथम भी कईबार उसको ये सब बाते विदित हो चुकी थी । प्रकटमे प्रेमाने कहा—"बहिन ! ईश्वरकी सृष्टिका भेद पाना तो हम जैसी अज्ञान स्त्रियोंके लिये बिलकुल असम्भव है , क्यों कि बडे बडे तत्त्वज्ञ ऋषियोंने तो इस भेदको समझा ही नही । हाँ, दोचार नर पिशाचोंके व्यवहारसे मनुष्य मात्रको दोषी ठहराना भूल है ।"

गायत्री—मैं मनुष्य मात्रको स्वार्थी नहीं कहती, लेकिन इसमें भी सन्देह नहीं, कि ससारमे स्वार्थियोंकी सख्या बहुत है ।

प्रेमा—ठीक है ।

गायत्री इसीसे तो अधिक अनर्थ होता है ।

प्रेमा—भला यह तो बताओ कि आज तुमको हुआ क्या है ?

गायत्री - आज मुझे हुआ तो कुछ नही है , यों ही बैठी बैठी कुछ सोच आ गया।

प्रेमा—किन्तु मै तो तुमको ही स्वार्थी समझती हूँ ।

गायत्री—(हंसकर) सो कैसे ?

प्रेमा—जो सर्वदा तुम्हारे लिये जीता मरता है उसको तुम नही चाहतीं ।

गायत्री—(खिलखिलाकर हँसती हुई) ऐसा कौन है बहिन ?

प्रेमा—(एक पत्र निकालकर गायत्रीके हाथमें देकर) देखो, कौन है ?

गायत्रीने प्रेमाके हाथसे पत्र लेकर कहा,—"बहिन ! यह पत्र तुझे कहा मिला ?"

प्रेमा—पहले पत्र खोलकर पढ लो, पीछे सब बातें बता दूँगी ।

गायत्री—क्या लिखा है—तू ही बता दे ?

प्रेमा—मुझे क्या मालूम, मैं दूसरेका पत्र क्यों पढने लगी ?

गायत्री—बहिन ! अब तक तू मुझे दूसरीही समझती है ? मै तो तुझसे किसी प्रकारका भेद भाव नही रखती । इसीलिये ऐसा कहा । तू भले ही मुझको भिन्न समझे , लेकिन मैं वैसा नहीं समझती । तेरे नामका पत्र मुझे मिल जाय, तो मैं पहले ही पढ लिया करूँ; पीछे तू अप्रसन्न भी क्यों न हो, पर मुझे उसकी चिन्ता नही ।

प्रेमा—नही गायत्री। मैं तुम्हें भिन्न नही समझती . लेकिन पत्र पढनेमें मुझे सङ्कोच मालूम होता था, इसीलिये ऐसा कहा। यदि तुम मेरा पत्र पढ लिया करो, तो मुझे प्रसन्नता ही होगी अप्रसन्नता नही। देखो तो बाबू साहब क्या लिखते हैं ?

गायत्री प्रेमाके हाथमें पत्र देकर बोली—"तू ही पढकर सुना दे बहिन।"

प्रेमाने सरसरी निगाहसे पत्रको देखकर कहा,—"बहिन। मुझे इस पत्रका पूरा पूरा मतलब नही लगता है, न मालूम तुमने उनको क्या लिखा था। जब तक वे बातें ज्ञात नही हों, तबतक इसका मतलब नही खुलेगा।"

गायत्री—और तो कुछ लिखा नहीं था, पर इतना अवश्य सूचित कर दिया था, कि दासी श्रीचरणोंकी सेवा करना चाहती है।

प्रेमा—क्या तुमने उनको यहां बुलानेकी इच्छासे ऐसा लिखा था ?

गायत्री—"नहीं बहिन, उनको यहीं बुलाकर मैं कहा रक्खूँगी ?"—कहकर आगे न बोल सकी, उसका गला भर आया। उसकी यह अवस्था देख, प्रेमाने कहा,—"सच्ची बात क्या है, जरा समझा कर कहो।

गायत्री—और तो कुछ नही, पर अब मैं इस घरमें अधिक दिनोंतक नहीं रह सकती। जितना शीघ्र हो सके, यहासे अलग होनेमें ही मैं अपना कल्याण समझती हू।

प्रेमा—क्या तुम्हारे भैयाने तुम्हें कुछ डाट-डपट तो नहीं सुनायी है ?

गायत्री—घरकी बाते कहाँतक बताऊँ, बहिन ! भैयाका व्यवहार मेरे प्रति वैसाही होता है, जैसा भाईका बहिनके प्रति होना चाहिये, किन्तु मेरी मातृतुल्या भाभी मुझको दासीसे भी गयी-बीती समझती हैं, प्राय ही जली कटी कहती रहती हैं। मैं उनकी झिडकियां सुनते सुनते ऊब उठी हू ।

प्रेमा—क्या तुम्हारे भैया इन बातोंको नहीं जानते ?

गायत्री—उनसे कहे कौन ? यद्यपि वे मुझसे पूछा करते हैं, कि "तुमको किसी प्रकारका कष्ट तो नहीं है ?" लेकिन मै उनको उचित बात कहना भी उचित नही समझती, क्यों कि मेरा पृष्ठपोषक कोई नहीं है। यदि भाभी बातका बतङ्गड कर दे तो मेरे लिये अच्छा नहीं होगा।

प्रेमा—बाबूजीसे क्यों नहीं कहती ?

गायत्री—मैं बाबूजीसे कहना भी उचित नहीं समझती। क्यों कि इससे उनको भी इस चौथेपनमें मानसिक खेद होगा। और वे इसके लिये कुछ कर भी नहीं सकते। सिर्फ एक भाई-भाभीके अतिरिक्त मुझे कोई दूसरा भाई और भाभी भी नहीं है, तब मैं इस बातको अपने ही हृदयमें क्यों नहीं रहने दू, दूसरेसे कहकर उसे भी दु खी करना ठीक नहीं समझती। इसीलिये तेरे अतिरिक्त और किसीसे मैने अपनी बीती बातें नहीं कहीं और तुमसे भी प्रार्थना करती हू कि तुम भी

किसीको ये बातें कहनेका कष्ट न उठाना—महावीर बाबूसे भी न कहना।

प्रेमा—नहीं वहिन, मैं किसीसे नहीं कहूंगी लेकिन, इससे मुक्ति पानेको कोई युक्ति है?

गायत्री—यही, कि जितनी जल्दी हो सके, यह घर छोड दू, क्यो कि एक दिन तो मुझे यह घर छोडना ही पडेगा।

प्रेमा—तेरा कहना विलकुल ठीक है। क्यों कि इसको प्रकट करनेमे लाभके स्थानमें हानि ही दिखाई देती है। ग्रामीण पड़ौसी अपवाद किया करेंगे और आपसमें द्वेष भी बढता-जायगा।

गायत्री—मनुष्यको विचारना चाहिये, कि मैं बहुत कम समयके लिये इस ससारमें आया हू। एक दिन यहासे अवश्य जाना ही पडेगा। न कुछ लेकर आया हूं और न कुछ साथ लेकर चलूंगा। तब फिर इस चार दिनके जीवनमें व्यर्थका विवाद क्यो खडा करू?

प्रेमा—यदि सबके चित्तमे इस प्रकारका विचार हो जाय, तब फिर दुनियामें लोगोंकी दुर्गति क्यों हो? जो लोग विद्वान् हैं, दूसरेको उपदेश देकर राहपर ले आनेकी चेष्टा करते हैं स्वयं वे लोग भी अपने उपदेशके अनुसार कार्य्य नहीं करते। फिर हम अबलाओंका तो कहनाही क्या है? खैर यह तो हुआ, पर अब तो बताओ, तुमने अपनी इस सोलह वर्षकी अवस्थामें ही इन बातोंका ज्ञान कैसे प्राप्त किया?

गायत्री—वहिन! तू भूलती है, क्या तुझको स्मरण नहीं है,

कि माताजी हमलोगोंको क्या उपदेश देती थीं ? उन्हींके पुण्य-प्रतापसे मुझे पढना-लिखना भी आया और कुछ कुछ उपदेश भी प्राप्त हुआ। यदि वे अभीतक जीवित रहतीं, तो मुझे जीवन यात्रा की पूरी पूरी सामग्री मिल जाती।

प्रेमा—हाँ, बहिन। तुम्हारी माताजीके आशीर्वादसे मैं भी कुछ कुछ पढने लगी। अगर उस समय कुछ लिखना पढना नहीं सीखती तो सांसारिक बातोंके विषयमें न कुछ सुन ही सकती और न समझ सकती।

गायत्री—यह पत्र कौन लाया है ?

प्रेमा—और कौन ? वे रातको आये हैं।

गायत्री—क्या महावीर बाबू आये हैं ?

प्रेमा—हाँ, आये हैं।

गायत्री—इस कृपाके लिये जरा मेरी ओरसे उनको धन्यवाद अवश्य देना।

प्रेमा—आप ही देना। वे तुमसे मिलना भी चाहते हैं।

गायत्री—मैं उनसे अवश्य मिलूँगी। इस कृपाके लिये अलग ही धन्यवाद देना, बहिन। मैं तो उनसे कबकी मिली रहती, पर न मालूम वे आकर भी बिना मिले ही क्यों चुपकेसे भाग जाते हैं ? क्या जाने तूने क्या कह दिया है, कि वे मुझसे मिलते भी नहीं। तू डरती है, कि कहीं वे भी न उनके पीछे लग जाय।

प्रेमा—खूब कहती हो—चलो, आज ही मैं तुमको उनके साथ मिलाये देती हूँ।

तीसरा परिच्छेद



नके चार बज चुके थे। प्यारे बाबू, अपने मित्र उदयभानु प्रसादके साथ, नित्यकी भाँति, छडी हाथमें ले किलेके मैदानकी ओर, वायुसेवनार्थ जारहे थे, आपसमें इधर-उधरकी अनेक बातें हो रही थी। युगल मित्रोंका निवासस्थान तो एक जगह नहीं था, पर दोनो बहुत दिनोसे एक ही साथ इलाहाबादके म्योर कौलेजमें शिक्षा पा रहे थे। दोनोमें कुछ भेद-भाव नही था। एक दूसरेको अपने सहोदर भ्राताकी भाँति प्रेम भावसे मानते थे, एकके विना दूसरेको चैन नही पडता था। दोनो ही एम० ए० की प्रथम श्रेणीके छात्र थे। पढने लिखनेमें भी दोनों एकसे थे, किन्तु दोनोंकी आर्थिक अवस्था एकसी नहीं थी। प्यारे बाबू अच्छे लक्ष्मीपात्रके लाल थे और उदयभानु दरिद्रता देवीके अनन्य प्यारे एक कुलीन भद्रपुरुषके पुत्र थे। सरस्वती देवीकी कृपासे किसी न किसी प्रकार उदयभानुने मैट्रीकतक शिक्षा पायी। आई० ए० में आनेपर उनको अपने सहृदय मित्र प्यारे बाबूकी कृपासे खर्च इत्यादिके लिये कुछ झंझट नहीं उठाना पडा। उनके वृद्ध पिता तथा एकमात्र अबोध अनुजको भी उनके मित्र प्रतिमास कुछ न कुछ सहायता

कर दिया करते थे, क्योंकि जिस समय उदय बाबू बी० ए० की प्रथम श्रेणीमें पढते थे, उसी समय उनकी पूज्या माता उनके अतिरिक्त एक षष्ठवर्षीय पुत्रको छोड़ इस संसारसे विदा हो चुकी थीं। उनके पूज्य पिताजी अपनी ग्रामीण कन्या पाठशालामें सिर्फ दश रुपये मासिक वेतनपर अध्यापकका कार्य करते थे, किन्तु इस विश्वव्यापी विकराल दुर्भिक्षके दिनोंमें दश रुपये महीनेसे दो व्यक्तियोंका भोजनादि किसी प्रकार नहीं चल सकता था। इसी लिये प्यारे बाबू, मित्रके पिता और भ्राताके लिये दश रुपये प्रतिमास अपने पाससे दिया करते थे। उदयभानु बाबू मित्रके दिये हुए रुपयेको बड़े सङ्कोचके साथ ग्रहण करते। कभी कभी तो कह बैठते,—"भाई! अब तुम मेरे लिये इतना कष्ट न उठाओ। अब मुझे आज्ञा दो कि किसी प्रकारकी छोटी मोटी नौकरी करके पढ़ूं।" किन्तु प्यारे बाबू मित्रके प्रस्तावको स्वीकार नहीं करते, उनका कहना था, कि मुझको तुम अपना ही समझो, पिताजीकी कृपासे मुझे धनकी कमी नही है। तुमको जब जिन चीजोंकी आवश्यकता हो, नि सङ्कोच मंगवा सकते हो। मित्रके उस प्रकारके वचनपर उदयभानु यही कहकर चुप हो जाते, कि "मेरे शरीरके रोम रोममें तुम्हारे उपकार भरे हुए हैं। तुम्हारी ही कृपासे मैं यहाँतक पढ सका।"

उस दिन किलेके मैदानमें पहुंचकर दोनों मित्र एक वृक्षके नीचे बैठ गये। कोई दश मिनटतक प्यारे बाबू चुप रहकर बोले—



जानेवाली गाडी साढे आठ वजे खुलती थी। उदय वावू आठ वजकर अठारह मिनट पर स्टेशन पहुँचे। वहाँ तक उनके अन्यतम मित्र वावू प्यारेलाल जी भी साथ आये। यथासमय गाडी प्लैटफार्म पर आ लगी। यात्री लोग चढने लगे। उदय भानु वावू भी अपनी छोटी सी गठरी लिये गाडी पर सवार हो गये। फकफक करती गाडी आगे वढी। प्यारे वावू अपने डेरे में लौट आये। उदयभानु मन ही मन सोचते जारहे थे कि किस प्रकार जाँच करूँगा ? कही वह स्वभावकी अच्छी न निकली, तो प्यारे जीवन भर मुझे झिडकता रहेगा और न मालूम उस वेचारी पर क्या वीतेगी ? क्यो कि मेरा मित्र अव्वल दरजेका हठी है। जिस वातके लिये हठ करता है, उसको विना पूरा किये नहीं छोडता। एकवार देख लेनेसे या उससे दोचार वातें करने ही से किसीके स्वभावका परिचय पाना कठिन है। इत्यादि अनेक प्रकारका तर्क वितर्क करते उदयभानु चले जा रहे थे। प्रत्येक स्टेशन पर यात्रियोंको चढाते उतारते यथासमय गाडी मुगलसराय स्टेशन पर आ गयी। यहा एक तरहसे गाडी खाली हो गयी, क्यो कि वहुतसे यात्री यहाँ उतर गये। उदयभानुने भी वह गाडी छोड दी और मुकामा जानेवाली दूसरी गाडीके इन्तजारमें मुसाफिरखानेमें जा ठहरे। यात्रियोंकी इतनी भीड वढ चली, कि मुसाफिरखानेमें पैर रखने की जगह नहीं थी। उदय भानु वावू भी एक कोनेमें वैठ उसी दृश्यका निरीक्षण कर रहे थे। सहसा वहा वडा गोलमाल हुआ। अधिक हल्ला होनेके कारण वे



भी अपनी जगहसे उठे। समय भोरका था, मुसाफिरखानेमें लालटेनसे पूरा प्रकाश हो रहा था। कुछ आगे बढ़ कर उदय बाबूने जो दृश्य देखा, उससे उनके हृदयमें बड़ा क्रोध और दुःख हुआ। वे देखते क्या हैं, कि एक नवयुवक भद्रपुरुष साधारण पोशाकमें खड़ा है और उसकी बाँयी ओर एक नवयुवती सुन्दर वेष-भूषासे सज्जिता होकर सिर झुकाये खड़ी है। उसके आगे दो तीन रेलवे पुलिसवाले पगड़ी बाधे, हाथमें डण्डा लिये अपनी अभद्रता का परिचय देनेको खड़े हैं। साथ ही दो तीन दुबले पतले बङ्गाली बाबू पुलिसके साथ हो उनको तङ्ग कर रहे हैं। पुलिसने उस नवयुवकसे उसका परिचय पूछा। युवकने अपना नामधाम सब साफ शब्दोंमें बता दिया और अपनी धर्म पत्नी कहते हुए उस युवतीके पिताका नाम और निवासस्थान भी बता दिया। यद्यपि युवतीने भी युवककी बातोंका अनुमोदन किया, किन्तु वे नर-पिशाच उसपर विश्वास क्यों करने लगे? उनके हृदयमें बुरे भाव लहरा रहे थे। वे लोग अनेक प्रकारसे युवकके प्रमाण देनेपर भी नहीं माने। उनका कहना था कि यह तुम्हारी धर्मपत्नी नहीं है तुम किसी दूसरेकी बहू बेटीको उड़ाकर लिये जारहे हो। जिस स्टेशनपर तुम सवार हुए वहाँके स्टेशन मास्टरने तार द्वारा ऐसी सूचना दी है। अस्तु हमलोग तुम्हें छोड़ेंगे नहीं, दोनोको हिरासतमें रखकर सची बातका पता लगा येंगे। अगर तुम्हारा ही कहना ठीक निकला, तो तुम दोनो छोड़ दिये जाओगे, अन्यथा अपने कियेका फल भोगोगे। उस नव-

युवकने अनेक प्रकारसे समझा बुझाकर उन नरप्रेतोंसे कहा किन्तु वे काहेको मानें? युवती बेचारी इस दुर्घटनासे बड़ी लज्जित हुई। सर नीचा किये रेल-यात्राको बुरा बताने लगी। उस समय दर्शकोंकी भीड़ लग गयी थी। उनमेंसे कोई उन युवक-युवतीको पति-पत्नी समझ रेलवे पुलिसको बुरा कहते, कोई युवक-युवतीको ऊँच-नीच कहते थे। इसी प्रकार जिसके मनमें जैसा विचार उठता, वह उसीका अनुमोदन करता। एक ओर खड़े-खड़े उदयभानु बाबू भी यह दृश्य देख, उन नर-पिशाचोंपर जो बेचारी अबलाका सतीत्व नष्ट करनेकी घातमें थे, दांत पीस रहे थे। जब कई बार कहनेपर भी युवक और युवती पुलिसके साथ चलनेको राजी नहीं हुए, तब एकने बल-पूर्वक युवकका हाथ पकड़ उसे आगे बढ़ाया और दूसरा युवतीका हाथ पकड़ने ही को था, कि दश बीस व्यक्तियोंके आगे पीछे उदयभानु बाबू उनके सामने आ खड़े हुए और भय दिखाते हुए उनको ऐसा करनेसे रोकने लगे। उनको ऐसा करते देख युवकने भी अपना हाथ पुलिसके हाथसे छुड़ा लिया और अपनी धर्मपत्नीके निकट आकर बड़ी उत्तेजनापूर्वक बोला "जरा सब्र करो, तुमलोगोंकी नीचताका पुरस्कार देकर ही मैं यहांसे प्रस्थान करूँगा। अभीतक मैं अपना पृष्ठपोषक नहीं पाकर चुप था और नम्रतापूर्वक सच्ची बातें कह रहा था।"

उदयभानु बाबूने युवकको सहायताके लिये अनेकों यात्रियोंको खड़ाकर लिया। दोनों दलोंमें बड़ा शोरगुल हुआ। यह देख

स्टेशनके बड़े कर्मचारी घटनास्थलपर आ पहुँचे। उन्होंने मामला बेढब देख, दोनों दलोंको डाट-डपट सुनाकर आगेसे पीछे हटाया और युवक तथा उनके सहायकोंको समझाबुझाकर उनसे क्षमा मांगी। उदयभानु बाबू तो उसे क्षमा नहीं करना चाहते थे, किन्तु युवकके समझानेपर उन्होंने भी क्षमा कर दिया, सात बजते ही हबड़ा जानेवाली गाड़ी स्टेशनपर आ लगी। युवक अपनी धर्मपत्नीके साथ गाड़ीपर सवार होने चला, किन्तु कुछ आगे बढनेपर युवती रुक गयी और अपने पतिसे उदयभानु बाबूको बुलानेके लिये बोली। युवकके पुकारनेपर उदयभानु बाबू उनके आगे आये। युवकने उनके आनेपर कहा—"मैं नहीं, ये आपको बुलाती थी।"

उदयभानु बाबूने युवतीसे नम्रतापूर्वक कहा—"क्या आज्ञा होती है?"

युवती नतमस्तक किये, बोली—"आज आपने मेरी रक्षा की है मैं आजसे आपको पिता समझती हूँ और इसी लिये निःसङ्कोच एक प्रार्थना करती हूँ। आशा है, कि आप उसे स्वीकार करेंगे। वह यह कि आप मुझे बाकीपुरतक पहुँचा आनेकी कृपा करें, अन्यथा न मालूम फिर कहीं मुझपर कोई विपत्ति आ पड़े।"

उदयभानुने, "जो आज्ञा" कह उन दोनोंको एक डब्बेमें बिठाया और आप भी उसीमें बैठ गये।

मार्गभर युवक और उदयभानु बाबूमें इन्ही सब विषयोंको

लेकर अनेक प्रकारकी बातें होती रहीं। देशकी अधोगतिपर भी अनेक प्रकारके तर्क-वितर्क होते रहे।





क सजे हुए सुन्दर कमरेके बीच मेजसे लगी हुई आराम कुर्सीपर एक युवक 'यङ्ग इण्डिया' नामक समाचार-पत्र पढ रहा था। मेजपर चुनी हुई स्त्री शिक्षा की कई मासिक पत्रिकाएं और पुस्तकें भी रक्खी हुई थीं। युवकका ध्यान न तो किसी उत्तम लेखपर था, न सम्पादकीय टिप्पणियोंपर। उसकी दृष्टि आवश्यकता वाले कालमोंपर अडी हुई थी। इसी समय एक युवती, एक छोटीसी बालिकाको गोदमें लिये, युवककी कुर्सीके पीछे चुपचाप आकर खडी हो गयी। युवक पत्रको देखनेमें ऐसा लीन हो रहा था, कि उसे किसीके आनेकी कुछ खबर ही न थी। दश मिनट तक चुपचाप खडी होकर युवती बोली,—"कैसी नौकरी खोजते हैं, महावीर बाबू?"

इतना सुनतेही युवक चौंक पडा। मुंह फेरकर देखा, कि एक देवाङ्गना उसके पीछे आकर खडी है। कुछ देर मौन

रह कुर्सीसे उठकर बोला—"मैं आपको पहली दृष्टिमें नहीं पहचान सका, गायत्रीजी। क्षमा करेंगी। वर्षों बाद आपसे भेंट हुई। अब तो आप पहले जैसी नहीं मालूम होती। कई प्रकारका परिवर्त्तन दिखाई देता है।"

गायत्री—(हसती हुई) मुझमें तो किसी प्रकारका परिवर्त्तन नहीं हुआ है। पर हाँ, आपके नेत्रोंमें अवश्य परिवर्त्तन दिखाई देता है, क्योंकि यद्यपि इस बार दो वर्षों बाद भेंट हुई है, तथापि पहले तो बराबर भेंट हुआ ही करती थी? अब तो आप ऐसे बदल गये, कि हमलोगोंको दर्शन देना भी अनुचित समझते हैं।

महावीर—क्षमा करे, मैं अवश्य दोषी हूँ।

"आप क्षमापात्र नहीं हैं, इसलिये मैं कदापि क्षमा न करूँगी," कहकर गायत्री हँसपडी।

महावीर—खैर, मैं क्षमापात्र नहीं हूँ, पर आप तो क्षमाशीला हैं न? अपनी ही ओर देखकर क्षमा कर दें।

गायत्री—मैं तो नहीं क्षमा करती, किन्तु यदि प्रेमा दीदी कह दें, तो क्षमा करदूँगी।

प्रेमा भी बाहर खडी थी। गायत्रीके मुखसे इतनी बात सुनते ही धीरे धीरे वहासे सरक गयी। पुन महावीर बाबूने कहा—"आप यहा कितनी देरसे खडी थीं?"

गायत्री—आप खडे क्यो हैं? जाइये, आपका अपराध क्षमा हुआ, बैठिये।

है। लोगोंपर मनमाना टैक्स लगानेहोसे अच्छी तरह पुजवानेका अवसर मिला करता है।

गायत्री—(मुँह बनाकर) किन्तु मैं इस प्रकार पाकेट भरनेको अच्छा नहीं समझती और न इस प्रकारकी आमदनीसे किसीको उन्नति करते ही देखती हूँ।

महावीर—(हंसते हुए) आज तो मुझे अच्छी उपदेशिकासे भेंट हुई!

गायत्री—तो शिक्षा ग्रहण कीजिये, जनाव!

महावीर—समय आनेपर देखा जायगा। लेकिन कोरी शिक्षा ही कहाँ तक कारगर होगी?

गायत्री—अवश्य कारगर होगी, पर यदि सच्चे हृदयसे आप स्वीकार करें तब तो?

महावीर—"अवश्य स्वीकार करूँगा।" यह कहकर बोले—"मैंने आपका एक बड़ासा कार्य कर दिया है। मुझे उसका पुरस्कार मिलना चाहिये।"

गायत्री—पुरस्कार योग्य कौनसा कार्य आपने किया है, जनाव?

महावीर—"वही, आपका पत्र।"

गायत्री—(हँसती हुई) तब तो आप चिट्ठी-रसाँ हुए। जिसने आपको पत्र दिया था, उसीसे पुरस्कार माँग लीजियेगा। फिर आपने तो मुझे पत्र दिया भी नहीं, बहिन प्रेमा ही पुरस्कार चुका देगी।

गायत्रीका कहना पूरा होनेहीको था, कि किसी कार्यवश प्रेमा भी उस कमरेमें आयी। उसको आया देख, पुन गायत्रीने कहा—"महावीर बाबू मुझसे चिट्ठी लानेका पुरस्कार मांगते हैं, किन्तु मैं तो किसी दूसरेके हाथ बिक चुकी हूँ, बहिन। अब मेरे पास रहा ही क्या, जो इनको देकर सन्तुष्ट करूँ? इसलिये तुमसे निवेदन है, कि मेरी ओरसे इनका पुरस्कार चुका देना, जिससे फिर कभी ये पुरस्कारके लिये न गिड़गिड़ावें।"

गायत्रीकी बातें सुनकर प्रेमा हँस पड़ी और महावीर बाबू लज्जित हो गये। महावीर बाबू गायत्रीकी वाक्पटुता की बड़ी प्रशंसा करते थे और साथ ही उसकी बुद्धि और विचारपर अपनेको धिक्कारते थे। करीब दो घण्टेतक उनलोगोंमें आमोद प्रमोदकी चुटकीली चुटकियां चलती रही। अन्तमें गायत्रीने इतना पूछा ही था कि—"उनसे आपकी कहां भेंट हुई, जो आप पत्र लाये?" उसी समय घरसे दासी उसको बुलाने आयी। दासीको आती देख गायत्रीने वहां विलम्ब करना उचित नहीं समझा। उसको भय हुआ कि न मालूम आज मामीसे क्या सुनना पड़ेगा? अपने प्रश्नका बिना उत्तर पाये ही गायत्री वहांसे चलती बनी। यहां उसके आनेमें इतना विलम्ब देख सुरभि देवी बड़-बड़ा रही थीं। उसी समय उसके पतिदेव, गायत्रीके मामा भी, किसी कार्यवश घर आये थे। सुरभिको अच्छा अवसर हाथ लगा। उसने उनको सुना-सुनाकर कहना आरम्भ किया—"मैं इस छोकरीसे लाचार हूँ; किसी समय घण्टे दो घण्टे अपने



घरमें नही रहती और जब कभी घरमें रहती भी है तो घरके कार्यों की देखभाल तो करती नहीं, कोई न कोई पुस्तक लेकर पढती रहती है। न मालूम, कैसी पण्डितायन हुई है। उनके भाई राम तो समझते हैं, कि मेरी गायत्री बडी सुशीला है। बिना माताकी लडकीको यदि मैं कुछ कहती भी हूँ तो लोग मुझे ही बुरी भली कहते हैं। अच्छे घरकी सयानी लडकीका इस प्रकार टहलना किसको नहीं खटकता होगा?" गायत्रीके भ्राता उसकी बडबडाहटको स्वाभाविक समझ कुछ नही बोले। उसी समय गायत्री अपनी बालसखी प्रेमाके घरसे, जो उसके घरहीके निकट था, चली आयी। उसको आयी देख उसके भाईने पूछा,—"कहाँ गयी थी, गायत्री?"

गायत्री, भाईके इस प्रश्नसे बहुत भयभीत होकर धीरे धीरे सिर झुकाये बोली,—"प्रेमा दीदीके स्वामी महावीर बाबू आये हैं। उन्होने ही बुला भेजा था"। अनुजाके उत्तरसे सुरभिके पतिदेव यमुनाप्रसादजीको किसी प्रकारकी अप्रसन्नता नहीं हुई किन्तु सुरभिके क्रोधका पारा बहुत चढ गया। वह बडी उत्तेजित होकर बोली—"तुम घरमें कब रहती हो? तुम्हे सदाही तो प्रेमा दीदीके पीछे घूमती देखती हूँ। क्या प्रेमा तुम्हारे घर कभी भूलकर भी आती है? मैं तो तुम्हे कुछ कहती नहीं, लेकिन तुम अब बहुत बढती जारही हो। जब कभी घर आती हो तो पुस्तक ले एक किनारे बैठ पढने लग-जाती हो। तुम्हारी जैसी मैं भी अपने पिताकी पुत्री और

भाईकी दुलारी वहिन हूँ।" भामी सुरभिकी वातोको सुन नत मस्तक किये पैरकी अंगुलीसे पृथ्वीपर चिह्न करती हुई गायत्री आसू बहाने लगी, किन्तु कुछ बोली नहीं। अनुजा गायत्रीको रोते देख यमुनाप्रसादजीको बडी दया आयी। उन्होने प्रबोधयुक्त बातोसे उसे चुप किया और अपनी धर्मपत्नी सुरभिको कहा,—"तुम इस प्रकार इसको मत डाँटा करो। पुस्तक पढना बुरा कार्य नही। गायत्री जितनी पुस्तके पढे, पढने दो और यदि हो सके तो उसीके निकट बैठकर तुम भी पढा लिखा करो।" पतिकी बाते सुनते ही सुरभि क्रोधसे नृत्य करने लगी और बोली—"पुस्तक पढनेसे मेरा काय कैसे होगा? क्या मै भी किसी दूसरेपर पेट पालती हूँ? यदि गृहकार्योंको न देखूँ, तो पाचों अंगुलियाँ मुँहमें कैसे आया करे? क्या बाहरसे अर्जनकर ले आनेहीसे पेट पूजा होने लगती है? या उसको भी बनाना पकाना पड़ता है?"

स्त्रीकी बाते सुनते ही यमुना बाबूकी क्रोधाग्नि भडकी और गायत्रीके हृदयमें पुन विषैले बाणके सदृश "क्या मैं भी दूसरेपर पेट पालती हूँ?" ये वाक्य बाण बिंध गये। बेचारी वहीं खडी आँसू बहाती, रोती रही। यमुनाप्रसादने सुरभिको दोचार खोटी-खरी बातोके साथ कहा--"सावधान, फिर कभी ऐसी बात सुनूँगा, तो जीभ पकडकर खींच लूँगा।" पतिके मुखसे इस प्रकारके अपमानजनक वाक्योंके सुनते ही सुरभि रोने चिल्लाने तथा अपनी माया फैलाने लगी। यमुनाप्रसादजीके घरमें कुह-



घरमें नहो रहतो और जब कभी घरमें रहती भी है तो घरके कार्यों की देखभाल तो करती नहीं, कोई न कोई पुस्तक लेकर पढती रहती है। ने मालूम, कैसी पण्डितायन हुई है। उनके भाई राम तो समझते हैं, कि मेरी गायत्री बड़ी सुशीला है। बिना माताकी लडकीको यदि मैं कुछ कहती भो हूँ तो लोग मुझे ही बुरी भली कहते हैं। अच्छे घरकी सयानी लडकीका इस प्रकार टहलना किसको नहीं खटकता होगा?" गायत्रीके भ्राता उसकी बडबडाहटको स्वाभाविक समझ कुछ नही बोले। उसी समय गायत्री अपनी बालसखी प्रेमाके घरसे, जो उसके घरहीके निकट था, चली आयी। उसको आयी देख उसके भाईने पूछा,—"कहाँ गयी थी, गायत्री?"

गायत्री, भाईके इस प्रश्नसे बहुत भयभीत होकर धीरे धीरे सिर झुकाये बोली,—"प्रेमा दीदीके स्वामी महावीर बाबू आये हैं। उन्होने ही बुला भेजा था"। अनुजाके उत्तरसे सुरभिके पतिदेव यमुनाप्रसादजीको किसी प्रकारकी अप्रसन्नता नहीं हुई किन्तु सुरभिके क्रोधका पारा बहुत चढ गया। वह बडी उत्तेजित होकर बोली—"तुम घरमें कब रहती हो? तुम्हे सदाही तो प्रेमा दीदीके पीछे घूमती देखती हूँ। क्या प्रेमा तुम्हारे घर कभी भूलकर भी आती है? मैं तो तुम्हे कुछ कहती नहीं, लेकिन तुम अब बहुत बढती जारही हो। जब कभी घर आती हो तो पुस्तक ले एक किनारे बैठ पढने लग-जाती हो। तुम्हारी जैसी मैं भी अपने पिताकी पुत्री और

भाईकी दुलारी बहिन हूँ।" भाभी सुरभिकी बातोंको सुन नत मस्तक किये पैरकी अंगुलीसे पृथ्वीपर चिह्न करती हुई गायत्री आसू बहाने लगी, किन्तु कुछ बोली नहीं। अनुजा गायत्रीको रोते देख यमुनाप्रसादजीको बडी दया आयी। उन्होंने प्रबोधयुक्त बातोंसे उसे चुप किया और अपनी धर्मपत्नी सुरभिको कहा,—"तुम इस प्रकार इसको मत डाँटा करो। पुस्तक पढना बुरा कार्य नहीं। गायत्री जितनी पुस्तकें पढे, पढने दो और यदि हो सके तो उसीके निकट बैठकर तुम भी पढा लिखा करो।" पतिकी बातें सुनते ही सुरभि क्रोधसे नृत्य करने लगी और बोली—"पुस्तक पढनेसे मेरा कार्य कैसे होगा? क्या मैं भी किसी दूसरेपर पेट पालती हूँ? यदि गृहकार्यों को न देखूँ, तो पाचों अंगुलियाँ मुँहमें कैसे जाया करें? क्या बाहरसे अर्जनकर ले आनेहीसे पेट पूजा होने लगती है? या उसको भी बनाना पकाना पडता है?"

स्त्रीकी बातें सुनते ही यमुना बाबूकी क्रोधाग्नि भडकी और गायत्रीके हृदयमें पुनः विषैले बाणके सदृश "क्या मैं भी दूसरेपर पेट पालती हूँ?" ये वाक्य बाण बिंध गये। बेचारी वहीं खडी आँसू बहाती, रोती रही। यमुनाप्रसादने सुरभिको दोचार खोटी-खरी बातोंके साथ कहा—"सावधान, फिर कभी ऐसी बात सुनूँगा, तो जीभ पकडकर खींच लूँगा।" पतिके मुखसे इस प्रकारके अपमानजनक वाक्योंके सुनते ही सुरभि रोने चिल्लाने तथा अपनी माया फैलाने लगी। यमुनाप्रसादजीके घरमें कुह-

रामसा मच उठा, टोले मुहल्लेकी स्त्रियां शोरगुल सुनकर दौड़ पड़ी, पर यमुना वाबूको आँगनमें खड़ा देख किसीको अन्दर प्रवेश करनेका साहस नहीं हुआ। प्रेमा भी उस समय वहातक आई। गायत्रीको खड़ी खड़ी रोती देख वह समझ गयी, कि सुरभिकी कृपाहीसे यह रो रही है। यमुना वाबूको देखकर वह भी भीतर नहीं आयी। यमुना वावूने उसे वाहर खड़ी देख बुला कर पूछा—"प्रेमा, इन दिनो तुम और गायत्री कौनसी पुस्तक पढती हो।"

यमुना वाबूके प्रश्नके उत्तरमें प्रेमाने निवेदन किया,—"इन दिनों तो कोई नयी पुस्तक नही मिली। भैया! यद्यपि तुम्हारी दी हुई इन्दुमतीको मैं कईवार पढचुकी तथापि कोई दूसरी पुस्तक नही मिलनेसे जव तव उसीको देखा करती हूँ।"

यमुनाप्रसाद—मैं और भी अच्छी-अच्छी पुस्तके ले आया हूं, तुम दोनो वहिने इन पुस्तकोको पढना और होसके तो अपनी भाभीको सुनाना।

प्रेमाने वडी प्रसन्नतापूर्वक कहा—"अवश्य पढकर उन्हें भी सुनाऊँगी, किन्तु भाभी पढना लिखना देखकर वहुत विगडती हैं।"

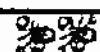
यमुनाप्रसाद—यह सव उसकी अविद्याके कारण है। जव एकवार उसको पढनेकी चाट लग जायेगी तव फिर काम वन जायगा, वह भी मनुष्य हो जायगी। किन्तु देखना, यदि इस कार्यमें तुमलोगोको कुछ कठिनता भी पडे तो घवडाना नहीं।

उस दिनसे प्रेमाकी इच्छा हुई, कि जितना शीघ्र हो सके

सुरभिको शिक्षिता करूं। पहले पहले तो उसे 'इस कार्यमें बडी कठिनाई पडी। सुरभिका स्वभाव ऐसा ईर्षा द्वेषसे भरा हुआ था कि वह गायत्रीको अपने यहां रहने देनेमें भीतरसे क्रुद्ध रही थी। साथही भाईकी कृपा उसपर अधिक देख उसके जलते हुए हृदयमें घृत सा पड जाता था। गायत्री, भाभीके स्वभावसे बहुत दु:खी थी और उससे मुक्तिका मार्ग भी अन्वेषण कर रही थी।

दूसरे ही दिन महावीर बाबू प्रेमासे विदा हो अपने कार्यपर गये और वहां जाते ही आपने पदत्यागका पत्र दे दिया। गायत्री की बातें उनके हृदयमें ऐसी घुसीं, कि उन्हें नीच सेवा-वृत्तिसे बिलकुल घृणासी होगयी। सहसा उनमें ऐसा परिवर्त्तन होते देख उनके साथियोंको बडा आश्चर्य हुआ। लोग कहने लगे, कि क्या कारण है कि इसको नौकरीसे इस प्रकार घृणा हुई? थोडे ही दिनोंके बाद लोगोंको महावीर बाबूके कायका पता लग गया।

नौकरी छोडनेके बाद ही महावीर बाबूने अपनी ससुराल जगतपुरके निकट ही एक छोटासा कारखाना खोला, जिसमें मेशीन द्वारा सूत तैयार किया जाता था। इस कार्यमें उनको कई धनी मानियोंसे अच्छी सहायता मिली। पहले पहल तो उस कारखानेसे महावीर बाबूको कुछ अधिक लाभ नहीं हुआ, किन्तु थोड ही दिनोंके बाद उसीके द्वारा वे अच्छे लक्ष्मीपात्र हो गये। वृद्ध भारतके नये युगमें लोगोंके हृदयमें मनोमोहक विदेशी चीजोंकी ओरसे श्रद्धा हट गयी और अपने देशकी बनी हुई चीजोंहीसे अधिक प्रेम होने लगा। लोगोंको अपनी



भूलका पता लग गया, कि अपनी भद्दी चीजहीं अपने कामकी होती है और उसीपर देश और जातिकी उन्नति भी अडी है। अब झोपडीसे बडे बडे महलोंकी स्त्रियांतक चरखेसे सूत कातनेको तैयार हुई हैं। इस नये युगमें भी महावीर बाबूके कारखानेकी भला उन्नति क्यों नही होती ?

महावीर बाबू उन्नतावस्थामें पहुँचनेपर चाहते थे, कि मैं पुनः एकबार अपनी उपदेशिका गायत्रीदेवीसे मिलूँ, पर उनकी इच्छा पूरी नहीं हो सकी। उसके बाद उनको फिर कभी गायत्री से भेंट नहीं हुई। जिस दिन उन्होने नौकरी छोडी, उसीके आठवें दिन गायत्री अपने पतिके साथ ससुराल चली गयी और फिर कभी लौटकर पिताके घर जगतपुर नही आयी। कई बार यमुना बाबूने उसे लानेका यत्न भी किया, किन्तु सब निष्फल हुआ। इससे यमुना बाबूके हृदयमें बडी गहरी चोट लगी। वे समझ गये थे कि सुरभिके अत्याचारहीसे मेरी अनुजा अब यहाँ नही आती। समय-समयपर वे सुरभिको यह विषय लेकर खरी खोटी भी सुनाया करते थे। गायत्रीके जानेपर प्रेमाकी संगतिसे सुरभि भी पढने लिखने लगी। पीछे वही सुरभि, जो पुस्तकोंसे घृणा करती थी, पुस्तकोंका कीडा हो गयी। साथ ही साथ उसके स्वभावमें बहुत परिवर्त्तन हो गया। अब वही सुरभि ननद गायत्रीके लिये दिन रात पश्चात्ताप करती है, रोती पीटती है, पर अब हो ही क्या सकता है ? समयपर चूक जानेसे पीछे सम्हलनेपर भी कुछ लाभ नही होता।

पाँचवाँ परिच्छेद



त महीनेके उषःकालका समय था। शीतल, मन्द, सुगन्धित वायु चल रही थी। वसन्त-ऋतुके रामराज्यमें लता-वृक्षोंकी शोभा खिले पुष्पोंसे सजकर कुछ और ही बहार दिखा रही थी। अलबेले अलिवृन्द स्वच्छन्दतापूर्वक इधर-उधर घूमते दिखाई देते थे। सुन्दर मुकुलित रसालके घने वृक्षोंकी डालियोंपर कलकण्ठी कोयलोंकी मनोहर कूक पथिकोंको सहसा अपनी ओर आकर्षित किये लेती थी। सुगन्धित पुष्पोंके मधु पराग से सनी सौरभित वायु मनुष्योंके मनको अपार आनन्द प्रदान कर रही थी। गानमें गौओंको लिये हुए ग्वाला उसी समय जङ्गलकी ओर जा रहा था। ठीक उसी उषःकालमें गङ्गाके किनारे बसे हुए एक छोटेसे ग्रामसे पाँच-सात छोटी-बडी लड-कियाँ हाथमें अपनी अपनी साडी और जलपात्र लिये गङ्गाकी ओर जा रही थीं। वे सब आपसमें एक दूसरीके साथ न मालूम क्या क्या कहती हुई हँसती बोलती चली जाती थीं। नित्यकी भांति अपने निर्दिष्ट स्थानपर पहुँच, अपनी अपनी साडी रख, वे लडकियां जलपात्र परिष्कृतकर घाट किनारे रक्खे हुए



शिलाखण्डोंपर बैठ अपने-अपने पैरोंका मैल साफ करने लगीं। उस समय उनके पृष्ठभागपर काली नागिनसी लटकती हुई लटें अपूर्वशोभा दिखा रही थी। हाथ-पैरोंका मैल साफकर सबकी सबने एकसाथ ही स्नान करनेके लिये गङ्गामें प्रवेश किया और घण्टोंतक डुबकी लगाती और एक दूसरीपर जलका छींटा देती रही। उधर नीले-आकाशके क्षितिजको लोहित करते हुए भगवान् भास्कर अपनी झाँकी दिखाने लगे और इधर स्वच्छ गङ्गाजलको प्रभासित करती हुई उन बालिकाओंके मुखचन्द्र शोभा दिखाने लगे। उस समयका वह अनुपम दृश्य देखनेसे मन स्वर्गीय आनन्दका अनुभव करता था। यह जड लेखनी उसका वर्णन करनेमें सर्वथा असमर्थ है।

लडकियाँ स्नानकर, अपनी-अपनी साडिया पहन, उतारी हुई साडी धो, जलपात्र जलसे पूर्णकर गावकी ओर चलने लगी। उनके ग्रामके पासही एक शिवालय था, स्नान करनेके बाद ही वे सब शिवजीको जल चढानेके लिये नित्य जाया करती थी। जिस समय वे लड़कियाँ पूजा करने जाती, उस समय मन्दिरका पुजारी भी नहीं रहने पाता था। यही वहाके मुखियाकी आज्ञा थी। पुजारी उन बालिकाओंके आनेके कुछ पहले ही पूजा करके मन्दिरके बाहर आकर टहला करता था। लडकियोंके पूजा करने बाद और लोग पूजा करने आते थे। सदाकी भाँति उस दिन भी सब लडकियाँ एक साथही वहा आ पहुँची। सबके केश-पाश खुले हुए पृष्ठदेश पर लटक रहे

थे। सबके हाथोंमें जलपात्र था। उनमें दश वर्षसे ऊँची और सोलह वर्षसे नीची उमरकी लडकिया थीं। उनके आनेके पहलेसे मन्दिरके पुजारीजी बाहर टहल रहे थे; किन्तु सदाकी भांति आज वे अकेले नही थे, उनके साथ एक नवयुवक स्नानकर हाथमें पुस्तक लिये टहल रहा था। वह उस ग्रामका नही था। आगन्तुक नवयुवकने पुजारीसे पूजाके लिये आज्ञा मागी। उत्तरमें पुजारीने कहा, "लडकियोंके पूजा करके जानेके बाद आप पूजा कर सकते हैं।" दोनोंमें इस प्रकार बाते हो ही रही थी, कि लडकियोका समूह मन्दिरके सामने आता दिखाई दिया। उन्हें आते देख, युवकने पुस्तकमेंसे एक चमकता हुआ चित्र निकालकर हाथमें लिया और पुजारीकी आख बचाकर उस चित्रको देख पुन॰ उन बालिकाओंको देखना आरम्भ किया। सहसा पुस्तकको बन्दकर युवक सर नीचा किये न मालूम क्या विचारने लगा। कुछ देर इसी अवस्थामें रहकर वह फिर टहलने लगा। जबतक लडकिया पूजा करती रही, तब-तक वह पुजारीके साथ मन्दिरके निकट ही बाहर टहलता रहा। यद्यपि युवक पुजारीसे कुछ बाते भी कर रहा था, किन्तु उसका चित्त लडकियोकी पूजाकी ओर लगा हुआ था और वह ध्यान लगाकर उनकी बाते भी सुन रहा था। लडकिया पूजा कर मन्दिरसे बाहर निकलीं। उन लडकियोके झुण्डमें एक पञ्चदश-वर्षीया अपूर्व सुन्दरी थी। उस नवयुवक पथिकने कईबार औरोकी आँख बचाकर उसकी ओर देखा। युवक उसको कमनीय



कान्तिसे विमुग्ध सा प्रतीत होने लगा। उस लडकीकी दृष्टि भी संयोगवश उस युवकके हाथवाली पुस्तकके चमकते हुए चित्र पर जा पडी। लडकी उस चित्रको देखते ही न मालूम क्यों आश्चर्यान्विता हो बार बार उस युवककी ओर सतृष्ण दृष्टिसे देखने लगी। उसकी कई सखियोंने उसको ऐसा करते देख लिया। धीरे धीरे सबकी सब मन्दिरसे बाहर हो घरकी ओर चलीं। मार्गमें एक लडकीने उस लडकीसे पूछा,—"क्यों अनुराधा जीजी! तुम बारम्बार उस युवक पुजारीकी ओर क्यों देखती थीं?"

अनुराधा, (हँसती हुई)—तुम झूठ क्यों बोलती हो आनन्दी?

आनन्दी—नहीं जीजी। मैं झूठ तो नहीं कहती, पर तुम छिपा रही हो।

अनुराधा,—छिपाती कुछ भी नहीं हूँ। मैं उस अपरिचित युवककी ओर नहीं देखती थी किन्तु मैंने एकबार उसके हाथ की पुस्तककी ओर अवश्य दृष्टि डाली थी।

आनन्दी,—उसके हाथकी पुस्तकमें कौनसी विशेषता थी, जिससे तुमको उसकी ओर कईवार देखना पडा?

अनुराधा,—पुस्तकमें कोई विशेषता हो या नहीं, पर मैं चाहती थी—

आनन्दी—क्या चाहती थी?

अनुराधा,—यही कि, यदि नवयुवकसे मेरी प्यारी आनन्दी का विवाह हो जाय तो अच्छा हो।

अनुराधाकी इस बातको सुनकर सब लडकिया हँस पडी। उनमेंसे एकने कहा,—"तब तो आनन्दीदेवीको पूजाका यथोचित पुरस्कार ही मिल जाय। क्यो आनन्दी! तुम उस नवयुवकको स्वीकार करोगी? रंग ढगसे तो वह भद्र पुरुष प्रतीत होता था और रूप भी अपूर्व ही था। फिर स्वीकार करनेमें विलम्ब क्यों करती हो? जरा मुँह खोलकर बोल दो, हाँ। देखो तो कैसा आनन्दोत्सव होता है!" उसकी बातोका कई लडकियोने समर्थन किया। उनकी बाते सुन आनन्दी मुसकुराती हुई बोली,—"यदि तुमलोगोका चित्त उस युवककी सुन्दरतापर जा अडा है, तो क्यों नही तुम्हीमेंसे कोई उसे अपना पति चुन लेती हो? मुझसे व्यर्थ ही ठठोली क्यों करती हो?"

अनुराधा,—क्यों आनन्दी! तुम अप्रसन्न तो नहीं हो गयी?

आनन्दी,—अप्रसन्न होनेकी क्या आवश्यकता है? बात टालनेसे कार्य नहीं चलेगा। मैंने देख लिया था, जीजी! तुम उस युवककी पुस्तकपरके चित्रको देख रही थी क्यों ठीक है न?

अनुराधा, (छिपाती हुई)—तुमको भ्रम हो गया है, आनन्दी!

आनन्दी,—हो सकता है।

अनुराधा—बिगडो नही।

आनन्दी—बिगडती नही हूँ, पर तुम असल बात कबतक छिपाओगी?

इसीप्रकार बाते करती हुई वे सब अपने-अपने घर चली



गयी। अनुराधा अपनी सहेलियोंसे विदा होते समय आनन्दीसे बोली,—"भोजनके बाद मुझसे आकर मिलना।" घर पहुँच कर अनुराधा निश्चिन्त नहीं रह सकी। उसके मनमें कई प्रकारके तर्क-वितर्क हो रहे थे। उस युवकके हाथवाले चित्रको देखनेहीसे उसके मनमें अनेक बातें उठती थीं। उसको इसकी चिन्ता हो गयी कि वह नवयुवक है कौन? और उसके हाथमें मेरा चित्र कैसे आया? कभी अनुराधा अपना बक्स खोलकर एक पुस्तकमें सम्मिलित दो नवयुवकोंके चित्रोंको देखती और फिर उस मन्दिरवाले नवयुवककी मुखाकृतिको स्मरण करती। पुस्तकके नीचे लिखे हुए चित्र-परिचयको पढ़कर अनुराधाके मनमें कुछ शान्ति हुई। मुखपर प्रसन्नताकी रेखा देख पड़ी। उसे अपने अनुमानके सत्य होनेकी आशा देख पड़ी। वह इसी उधेड़बुनमें थी, कि उसकी बालसखी आनन्दी उसके कमरेमें आ उपस्थित हुई। आनन्दीको आते देख अनुराधा ने प्रसन्न हो कहा—"आओ बहिन। तुम्हारे बिना मैं अपने कार्यमें सफलता न प्राप्त कर सकूंगी, उस समय तो मैंने तुम्हें यथार्थमें सच्ची बातें नहीं कही थीं, किन्तु अब अवश्य कहूंगी।"

आनन्दी,—क्या कहती हो, जीजी! कहो।

अनुराधा—उस मन्दिरवाले युवकके हाथमें एक चित्र था, क्या तुमने उस चित्रको देखा था?

आनन्दी—अच्छी तरह तो नहीं देख पाया। क्यों? किसका चित्र था?

अनुराधा – वह तो मेरा ही चित्र था।

आनन्दी—ऐं तुम्हारा चित्र। उस युवकके हाथमें ?

अनुराधा—उसका कारण भी अब कुछ कुछ प्रकट हुआ है।

आनन्दी—क्या ? शीघ्र कहो, वह कारण क्या है ?

अनुराधाने अपने हाथकी पुस्तकका चित्र दिखाकर आनन्दी से पूछा,—"देखो, उस युवकसे यह चित्र मिलता है या नहीं ?"

आनन्दी—हां, बहिन। यह चित्र उसी युवकका है। कहो यह कौन है ?

अनुराधा—देख लो, नीचे नाम अङ्कित है।

आनन्दी—(हँसती हुई) तब तो ये तुम्हारे भी मित्र ही, ठहरे। अब मैं समझती हूँ कि वे विचारे मित्रका ही कार्य करने आये होंगे। अच्छा, तब तो तुमको उन्हें सम्मानपूर्वक अपने यहाँ बुलाना चाहिये।

अनुराधा—अभी क्या मालूम, कि वह कौन है ? हो सकता है कि मेरा यह अनुमान असत्य हो।

आनन्दी—अच्छा, ठहरो। मैं उसका परिचय पुछवा मगवाती हूँ।

अनुराधा—इसीलिये तो मैंने तुम्हे बुलाया था। लेकिन देखना, कहीं उनको यह रहस्य न मालूम हो जाय।

आनन्दी—सम्भवत रहस्य नहीं मालूम होने दूंगी।

उस युवकने जबसे अनुराधाको देखा था, तभीसे उसके



रूपको अपने मित्रके अनुरूप समझ प्रसन्न था, किन्तु उसके गुण की खोजमें लगे रहने पर भी पूरा पूरा पता नही पा सका था और इसी फिक्रमें था, कि किस प्रकार उसके गुणोंका पता पाऊं। युवकके इसी खोजमें वहा दो दिनोंतक टहलनेपर उसका पूरा पूरा पता उसको लग गया और युवककी सब बाते अनुराधा ओर आनन्दीसे भी छिपी न रहीं। दोनों दोनोंका परिचय पाकर प्रसन्न हुए। अब मैं भी पाठकोंको बता देना चाहता हू, कि वह युवक प्यारे बाबूके अन्यतम मित्र उदय भानु थे। वह अपने मित्रके आज्ञानुसार पार्वतीपुरके जमीन्दारकी लडकी, अनुराधाके रूपरंग और गुण-अवगुणोंकी जाच करने आये थे।

उस दिन गङ्गा पार करनेमें मल्लाहों की खुरदनोकी प्रथा दूर करनेवाले भी यही उदयभानु बाबू थे।

पार्वतीपुरसे वापिस जाकर उदयभानु बाबूने अपने मित्र प्यारे बाबूको सब बातें कह सुनायीं। मित्रके मुखसे अपनी भावी पत्नी अनुराधाको प्रशंसा सुनकर प्यारेबाबू भीतर ही भीतर बहुत प्रसन्न हुए। साथ ही उन्होंने उदयभानुको धन्यवाद भी दिया। उदयभानुने मित्रसे कहा—"भाई। सिर्फ धन्यवादसे कार्य नहीं पूरा होगा, अपने वचनको भी पालन करना पडेगा।"

प्यारे बाबूने कहा,—"आप घबरावे नहीं, जनाब। आपकी इच्छाके अनुसार तैयारिया होनेको हैं। अब समय कम है, क्या

इस शुभ समयमें तुम अपनी श्रीमतीको स्वर्णपुर आने दोगे? माताजी मुझसे कईबार कह चुकी थी।"

उदयभानु—पहले आपकी श्रीमतीजी तो आ लें। पीछे दूसरेकी श्रीमतीको बुलाते रहियेगा। माताजी चाहेगी तो स्वय बुलवा लेगी। आपसे और मुझसे पूछनेकी आवश्यकता ही क्या है?

प्यारे बाबू—इसीलिये, कि कहीं आपकी मर्जी न हो तो वे कैसे बुलायेगी?

उदयभानु—"अथवा आपकी श्रीमती जी आना नही स्वीकार, करें तो क्या हो?" यह कह एक पत्र निकालकर अपने मित्र प्यारे बाबूके हाथमें देकर कहा कि देखो, उसकी क्या इच्छा है?

पत्र पढकर प्यारे बाबूने कहा—"यह पत्र कब आया था, उदय?"

उदयभानु—"पार्वतीपुर जानेके एक दिन पहले मिला था। इसीलिये मै एक दिनके लिये घर भी गया था, पिताजीको कह आया था, कि उसको वहासे मगवा ले।

प्यारे बाबू—तो क्या श्रीमती गायत्रीदेवी भरतपुर आगयी?

उदयभानु—सम्भवत आगयी होगी। बडी आवश्यकता है, तो जाकर दर्शन कर आओ।



छठाँ परिच्छेद

गया जिलेके अन्तर्गत भरतपुर ग्राममें उदयभानुके पिताजीका निवासस्थान था और दरभंगे जिलेके अन्तर्गत स्वर्णपुरमें प्यारे बाबूके पूज्य पिता, राजकुमार प्रसादजी निवास करते थे। राजकुमार प्रसादजी छोटेमोटे जमीन्दार थे और प्यारे प्रसादके अतिरिक्त उनको कोई दूसरी सन्तान नहीं थी। इसीसे माता-पिताका स्नेह उनपर सीमाके किनारे पहुँचा हुआ था। उदयभानु भी जब तब अवकाशके समय मित्रके साथ स्वर्णपुर आया करते थे। उनका यहा आना राजकुमार बाबूको अच्छा नही लगता था, क्योंकि वे इसको फजूल समझते थे। उनका ख्याल था कि मित्र समश्रेणीका होना ही अच्छा है। किसी लक्ष्मी-पात्रकी अर्थहीन कङ्गालसे मैत्री नही शोभती और न उसमें प्रतिष्ठाही है। इच्छा नहीं रहने पर भी वे प्यारे बाबूके कार्यमें छेडछाड नही करते थे, इसी लिये उदयभानुके विषयमें कभी कुछ नहीं कहते, किन्तु उदयभानु उनकी मुखाकृति देखकर ही ताड गये थे, कि मैं इनकी आँखोंमें खटकता हूँ और इसी कारण मित्रके अधिक आग्रह करनेपर कभी ही कभी आते थे।

बाबू प्यारेप्रसादजीकी माताजीका स्वभाव बडा ही

प्रशंसनीय था। वे दीन-दुखियोंको देखकर किसी न किसी प्रकार उनकी कुछ न कुछ सहायता अवश्य करती थीं। यथार्थमें उन्होंने अपने पुत्रसे कईवार कहा था, कि मेरी इच्छा होती है कि तुम्हारे विवाहके समय एकवार तुम्हारा मित्राणीको बुलाऊँ, किन्तु कुछ आगे पीछे विचारनेसे साहस नहीं होता है। "आगे-पीछे विचारनेसे साहस नही होता है," इस वाक्यका अर्थ प्यारे बाबूने कुछ दूसरा ही लगाया था। इसीसे उन्होंने अपने मित्रसे वैसा कहा था। उदय बाबूने भी अपनी धर्मपत्नीको वहा नही जाने देनेका विचार करलिया था। वह और किसी मतलबसे नही, सिर्फ राजकुमार बाबूके उग्र स्वभावहीसे डरकर।

यथासमय बडी धूमधामसे बाबू प्यारेप्रसादजीका विवाह पार्वतीपुरके जमीन्दार बाबू नीलमोहनकी कन्या अनुराधासे हो गया। वर कन्याकी युगल जोडी सब प्रकारसे प्रशंसनीय देख, दर्शकोंको अपार आनन्द हुआ। उदयभानुने मित्रके विवाह-में अपने ऊपर बहुत कार्य उठाया था और सबको सफलतापूर्वक निवाहते देख, राजकुमार बाबू भी उनकी खूब प्रशंसा करते थे। विवाह-कार्य मङ्गलपूर्वक पूरा हो जानेपर राजकुमार बाबू पुत्र और पुत्रवधूके साथ स्वर्णपुर पहुँचे। पुत्रवधूको देखते ही प्यारे बाबूकी माता प्रसन्नतासे खिल गयी। उन्होंने उसके रूपको देखकर समझा, कि साक्षात् भगवती ही मनुष्यरूपमें उसके घर आयी हैं।

प्यारे बाबूने उदयभानुकी स्त्री गायत्रीको अपने विवाहके



समय बुलवानेकी बहुत चेष्टा की, किन्तु अस्वस्थताके बहाने उदयभानुने उसे वहां नही आने दिया।



ए म० ए० की परीक्षा देनेके कुछ दिन पहले ही प्यारे बाबूने पढ़ना छोड़ दिया, क्योंकि जबसे उनका विवाह हुआ तभीसे उनका चित्त पढनेकी ओरसे बिल्कुल हट गया। वे तभीसे अपनी अनुराधाके अगाध प्रेम-सागरमें लहरें मारने लग गये। वे घरका कार्य भी नही देखते थे। रात-दिन महलोंहीमें पड़े रहते थे, यद्यपि अनुराधा उनको ऐसा करनेसे मना करती थी, किन्तु वे उसके कहनेको टाल देते। कहा करते, कि ईश्वरने हम लोगोंको जन्म सुखभोगके लिये ही दिया है। किस चीजकी कमी है? इस नश्वर शरीरके नष्ट हो जानेपर यह धन किस काम आयेगा? राजकुमार बाबू पुत्रको विलासिताके गर्त्तमें गिरते देख, बहुत दुःखी थे। वे परिश्रमसे सञ्चय किया हुआ धन विलासिताकी अग्निमें भस्म होते देख, भीतर ही भीतर कलपते थे। प्यारे बाबूकी माता भी पुत्रके स्वभावमें इस प्रकार परिवर्त्तन होते देख बहुत घबरायी, पर कोई युक्ति न देख चुप थीं। जबसे प्यारे बाबूने पढना छोडा, तभीसे भूलकर भी उन्होने अपने अन्य

तम मित्र उदयभानुकी खोज नहीं की। उदयभानु बाबूने कई पत्र लिखे, लेकिन एकका भी उत्तर उन्हे नहीं मिला। एकबार उदयभानु स्वर्णपुर गये भी, लेकिन वहा भी मित्रसे भेंट नहीं हुई। बेचारे निराश होकर लौट आये और फिर कभी वहां जानेकी इच्छा न की। जबसे प्यारेने पढना छोडा, तभीसे उदयभानुको खर्च देना भी बन्दकर दिया। किसी प्रकार लडकोंको घरपर पढ़ाकर उन्होंने एम० ए० की डिग्री प्राप्त कर ली। एम० ए० की डिग्री प्राप्त करनेपर कुछ दिनोंतक उदयभानु अपने ग्राममें ही आकर रहे। उनके घरकी अवस्था पाठकोंसे छिपी नहीं है। उनके वृद्ध पिता सिर्फ दश रुपये महीनेके नौकर थे और घरमें पुत्रवधू गायत्रीके सिवाय छोटा लडका विश्वनाथ भी था। दश रुपयामें तीन व्यक्तियोंका निर्वाह इस कराल दुर्भिक्षके समय बिलकुल असम्भव था। जबतक प्यारे बाबू दश रुपये महीने सहायताके रूपमें देते रहे, तबतक किसी प्रकार उनका निर्वाह हुआ, पर जब उन्होंने खर्च भेजना बन्द कर दिया, तभीसे उनके कष्टकी मात्रा अधिक बढ गयी। उधर तो आमदनी बन्द हुई और इधर गायत्रीके आनेसे खर्च अधिक हो गया। कुछ दिनोंतक उदयभानुके पिता बहुत घबराये, किन्तु चतुरा पुत्रवधू गायत्रीके सुप्रबन्धसे उनका कष्ट दूर हुआ। गायत्रीने अपने ससुरसे कहकर एक चरखा मंगवा सूत कातना आरम्भ कर दिया। बूढा, गायत्रीके काते हुए सूतको बाजारमें लेजाकर बेच लाया करता था। इसी प्रकार महीनेमें



बीस रुपयेकी आय हो जाती थी, जिससे सुखपूर्वक उनलोगोंका समय कट जाता था। गायत्री इसी अवस्थामें प्रसन्न रहती थी। उसको कभी अपने पिताके घरका स्वर्गीय सुख स्मरण आकर दुखी नहीं कर सकता था। हाँ, उसे जब कभी अपने पिता, भ्राता और भ्रातुष्पुत्र महादेवका स्मरण होता, उस समय वह अवश्य कुछ दुःखी हो जाती थी।

उदयभानु बाबूने कुछ दिन घरमें रहकर गायत्रीके कार्योंको देखा। उसके कष्टोंको देख, उन्हें बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने मनही मन उन्होंने अपनेको बहुत धिक्कारा। वह इसलिये, कि यह एक बड़े घरकी लड़की, होकर भी अपने ऊपर अनेक कष्ट उठाकर हमारे पिता-भ्राताका पालन करती है और मैं ऐसा अधम हूँ कि और तो क्या, आजतक दूसरेहीकी सहायतासे अपना पेट भी पालता रहा। कभी कभी वे गायत्रीके सामने भी ये बातें कह बैठते थे। गायत्री इससे बड़ी लज्जा पाती थी और उन्हें ऐसा कहनेसे रोकती थी। पूरे तीन महीने तक गायत्रीकी कमाईसे उदयभानु बाबूने अपनी पेट पूजा की। बहुत दौड़धूप करनेके बाद चौथे महीने उनको आरा टाउन-स्कूलमें हेडमाष्टरकी जगह २००) दो सौ रुपये मासिक वेतनपर मिली। गायत्रीके सूतकी बिक्रीके ३०) रुपये राह-खर्च लेकर वे अपने कार्य पर गये।

प्यारे बाबू अच्छे विलासी निकले। अनुराधा भी उनकी संगतिमें उन्हीं जैसी हो गयी। पांच ही वर्षके अरसेमें उनके घरकी लक्ष्मी चलती बनी। राजकुमार बाबू पुत्रके व्यवहारसे

ऐसे दुःखी हुए, कि तीन ही चार वर्षके बाद पुत्रका साथ सदाके लिये छोड़ संसारसे ही चल बसे। पिताके मरते ही प्यारे बाबू पर विशेष विपत्ति आ पड़ी। जमीन्दारीके कार्यो की देखभाल करनेवाला कोई न रहा। महाजनोंसे बहुत रुपया उधार लाया गया। धीरे धीरे उनकी सब जमीन्दारी बिक गयी। यहांतक कि रोटियोंके लाले पड़ने लगे। अनुराधा, पतिकी ऐसी अवस्था देख, बड़ी दुःखी रहने लगी, किन्तु इतना होनेपर भी प्यारे बाबूकी प्रकृति अभी नहीं बदली थी। अपनेको अर्थका कष्ट होते देख नौकरी करनेकी चिन्ता हुई सही, किन्तु खर्चकी ओरसे मन नहीं हटा। एक एककर अनुराधाके सब भूषण बिक गये। उसी अवस्थामें उनकी पूज्या माता भी स्वर्गीया हो गयीं। इस प्रकारकी विपत्तियोंके झमेलेमें पड़कर प्यारे बाबूको अपनी भूल देख पड़ी। इधर माताके श्राद्धकर्मसे उन्होंने किसी प्रकार उद्धार पाया ही था, कि उधर अनुराधा बीमार पड़ी। धर्मपत्नीको बीमार पड़ते देख बाबू साहब बहुत घबराये और कोई युक्ति न देख, उसको पिताके घर पहुंचा आये। धनजन सबसे अपना घर खाली हो जानेसे प्यारे बाबूको वहां रहनेमें बड़ी तकलीफ होने लगी। इसी अवस्थामें उनको अपने अन्यतम मित्र उदयभानुका स्मरण हुआ। पहले तो अपने व्यवहारसे उनको मित्रके यहां जानेमें संकोच हुआ, फिर मित्र समझ वहीं जाकर क्षमा मांगनेका विचार कर वे उनकी खोजमें बाहर निकले।

उदयभानु बाबूने आरा-टाउन स्कूलमें दो वर्षतक अध्यापकका

कार्य करनेके बाद अपनी धर्मपत्नी गायत्री और अपने अनुज विश्वनाथ तथा पूज्य पिताजीको भरतपुरसे बुलवा कर अपने साथ ही रक्खा। इस समय विश्वनाथ उसी स्कूलकी तीसरी श्रेणीमें पढता था। अब गायत्रीको किसी प्रकारका कष्ट नहीं था, किन्तु अभीतक उसके घरसे चरखेका कार्य बन्द नही हुआ है। अन्तर इतना ही हुआ है कि अब उस कार्यको वह दासियोंके द्वारा कराती थी, क्यो कि गृह कार्यसे उसे अवकाश ही नही मिलता। आरे आनेके एकही वर्ष बाद गायत्रीको एक पुत्र हुआ था। उदयभानु बाबूके पूज्य पिता पौत्र-रत्नको पाकर बहुत ही हर्षित थे। उदयभानुका छोटा भाई, विश्वनाथ भ्रातृपुत्रको देख बडा आनन्दित रहता था। अब सब प्रकारसे उदयभानु बाबू सुखी थे। यदि कभी कभी दुख होता था, तो सिर्फ अपने मित्रकी प्रकृतिका स्मरण कर।

एक दिन संध्याके समय उदयभानु बाबू वायु सेवनकर लौटे आ रहे थे कि उनकी दृष्टि एक ऐसे आदमी पर पडी, जो फटे-पुराने कपडोंको पहने उनसे कुछ आगे दूसरी ओर जा रहा था उसको देखते ही ये बडी तेजीसे उसकी ओर बढे। कुछ आगे बढने पर न मालूम क्यों ठहरकर फिर उसीको देखने लगे। कुछ देर उसे देख फिर आगे बढे और शीघ्र ही उस पथिकके निकट जा बोले,—"क्या आप अपना परिचय देनेकी कृपा करे गे?" इनकी इतनी बातें सुनते ही वह पथिक मुडकर इनकी ओर देखने लगा। आँखें चार होते ही एक दूसरेके गले लग गये।

कुछ देर तक तो दोनो चुप ही रहे फिर उदयभानु वावूने पूछा—
—"तुम्हारी यह अवस्था क्यों है ?"

प्यारे वावूकी आखोंमें आँसू भर आया। उनकी यह दशा देख उदयभानुने कहा—"कहो, कुशल तो है न ?"

प्यारे वावू—मित्रका अनादर करनेसे कबतक मनुष्य कुशलसे रह सकता है ?

उदयभानु—पिता माता कैसे हैं ?

प्यारे वावू नतमस्तक किये बोले,—"वे लोग मुझे छोड स्वर्गको गये, अनुराधा पिताके घर बीमार पडी है। धनका जमाखर्च लग गया। मैं इधर-उधर भटक रहा हूँ, विपत्तिमें मित्र ही साथ देता है, इसी विचारसे तुम्हारे निकट आया हूँ।"

उदयभानु वावूको मित्रकी वातपर बडा दुःख हुआ। किसी प्रकार बोध-प्रबोध देकर उनको अपने घर लाये और बडे ही आदर-सत्कारसे रक्खा। रातमें भोजन करनेके बाद दोनो एक सजे-सजाये कमरेमें बैठे। प्यारे वावूने अपने मित्रके घरकी सजावट तो वहा नही पायी, लेकिन जो कुछ देखा, सबकी सब चीजे कामकी और अपने ही देशकी बनी पायीं। यह देखते ही उनके आनन्दकी सीमा न रही। मित्रद्वय आपसमें कुछ बाते कर रहे थे, कि एक सुन्दरी युवती चार पान लिये कमरेमें आयी। उसने दो दो पान दोनोके हाथमें देकर नतमस्तक किये धीरे धीरे प्यारे वावूसे कहा—"कहिये, मेरी वहिन अनुराधादेवी तो अच्छी हैं न ?"

प्यारे वाबू—अच्छी तो नहीं हैं,—ज्वरावस्थामें पिताके घरमें हैं।

बीचहीमें छेड़कर उदयभानु वाबू बोले,—"वे कितने दिनोंसे बीमार हैं?"

प्यारे वाबू—एक महीनेसे क्या कम हुआ होगा?

उदयभानु—तो क्या बराबर एकही सी अवस्था चली आती है?

प्यारे वाबू—परसोंके पत्रसे ज्ञात होता है, कि ज्वर घट रहा है और तबियत कुछ अच्छीसी मालूम होती है, देखें ईश्वर क्या करते हैं। वहां भी सेवा कम होती है।

गायत्रीने कहा—"क्या उनको यहा नहीं बुलवा सकते?"

उदयभानु—हा जी, अच्छा तो होगा, यहीं लिवा लाओ।

प्यारे बाबू—फिर यहा कौन है, जो उसकी शुश्रूषा करे?

गायत्री—आप चिन्ता नही करे। मैं उनको यहा किसी प्रकारका कष्ट न होने दूगी। अच्छा हो, यदि आप शीघ्रही उनको यहां बुलवा लें।

गायत्रीकी बातें सुनते ही प्यारेबाबू भीतर ही भीतर उसकी प्रशंसाकर कहने लगे,—"मालूम होता है, यह कोई स्वर्गीया देवी हैं।" प्रकटमें बोले,—"देखा जायगा।"

उदयभानु बाबू—देखा क्या जायगा? अब तो सबका श्राद्ध कर ही चुके भला अब भी तो आँख खोलो। अनुराधाको यहा बुलवानेमें तुमको आपत्ति क्यो होती है? अरे, यह घर भी

तो तुम्हाराही है ? मेरा यह प्रकाण्ड शरीर भी तो तुम्हारे ही अन्नका पला है ? इस घरको अपना ही समझो। यदि तुम नहीं जा सकते हो, तो कहो, मैं हो जा कर लेआऊँ।

उदयभानु बाबूकी बात सुनकर प्यारेबाबू चुप रह गये, बार-बार-आग्रह-अनुरोध करनेपर बोले,—"तुमको मना कौन करता है ? तुम तो अगले ही दिन लाये थे ? जब जी चाहे, लिवा लाओ अथवा मुझे कहो तो मैं भी जानेको तैयार हूँ।'

आठवें दिन प्यारेबाबूने अनुराधाको पार्वतीपुरसे आरे बुलवा लिया। अब वह भी विज्वरा हो गयी थी। आरे आनेके एकही महीने बाद वह पहले जैसा हृष्टपुष्ट हो गयी। अब प्यारेबाबू आरेहीमें किसी देशी चीनीके कार्यालयमें प्रधान कर्मचारीके पदपर नियुक्त हो गये और सुखपूर्वक दिवस व्यतीत करने लगे। दोनो मित्र सपरिवार साथही रहा करते थे। गायत्री, अनुराधाको और अनुराधा, गायत्रीको पाकर बहुत खुश रहा करती थी। दोनोने साथ रहकर कसीदेके कार्यमें अच्छी उन्नति कर ली। विश्वनाथ भाभीके आनेसे माताका दुःख भूला हुआ था। सबके सब अमन चैनसे रहने लगे, किन्तु उन सबका यह सुख अधिक दिनोतक नहीं रहा। विपत्ति भी उनके पीछे ही पीछे घूम रही थी। बेचारे प्यारेबाबूको यहां भी अधिक दिन सुख नहीं मिला। थोड़े ही दिनोके बाद स्त्रीने संसार छोड़ दिया। इस विषम वियोगके दुखको वे नहीं सह सके, विक्षिप्तकी भांति हो गये। अनुराधाकी मृत्यु जहरीले



सर्पके डसनेसे हो गयी। प्यारेबाबू भी विक्षिप्तकी भाँति उसी विषैले सर्पको ढूँढते फिरते और कहा करते, "मुझे क्यो नहीं काट खाता?" उनकी अवस्था भी उत्तरोत्तर बिगडती ही चली। उदयभानु बाबू मित्रकी अवस्था देख बहुत घबराये। अन्तमें निरुपाय हो कुछ दिनका अवकाश ले अपनी जन्मभूमि भरतपुरको गये। प्यारे बाबू भी साथ ही थे। वहां कुछ दिन रहने बाद उन्होंने देवघरके लिये प्रस्थान किया। पूरे बीस दिनोंतक इसी प्रकार इधर उधर घूमते हुए वे आरे पहुँचे। आरे पहुँचकर घर आनेके पहलेही किसी विद्यार्थीसे ज्ञात हुआ कि उनकी धर्मपत्नी गायत्री बहुत बीमार हैं। घर आते ही वे गायत्रीके कमरेमें गये। वहांका दृश्य देखते ही उदयभानु बहुत घबराये। गायत्री ज्ञान हीनावस्थामें पडी थी। दश बारह घण्टे पहलेसे ज्वर उतर गया था। दशा शोचनीय हो रही थी। नाडी अपना स्थान छोड चुकी थी। कभी कभी गायत्री नेत्र खोल करके मनुष्योंमें किसीको ढूँढती थी और फिर आखें बन्द कर लेती थी। ज्यों ही मित्रके साथ उदयभानु बाबूने चारपाईके निकट जाकर गायत्रीको पुकारा, त्यों ही उसने अपनी आंखें खोल उनकी ओर देखा। उस समय उसके कमल-मुखपर प्रसन्नता की छाया दीख पडी। वह टकटकी लगाये उनकी ओर कुछ देर देखती रही। उसकी बोली बन्द हो चुकी थी, इसलिये बोल नही सकी, चेष्टा करके दोनों हाथ जोड प्रणाम कर गायत्रीने फिर आंखें बन्द करलीं और उसकी प्राणवायु शरीरसे निकल गयी। उदयभानु गायत्रीके

वियोगसे बहुत दुखी हुए, किन्तु ढाढस बाँधे हुए उन्होंने मनका दुख किसीपर प्रकट नही होने दिया। गायत्रीका श्राद्ध भी न हुआ था, कि प्यारेबाबू भी मित्रका साथ छोड चुपकेसे न मालूम कहाँ चले गये। उदयभानु बाबूको फिर कभी उनका पता नही लगा। इस प्रकार दुख झ झटोंके झमेलेसे उनका मन किसी कार्यमें नहीं लगता था। स्कूलसे पूरे तीन महीनेकी छुट्टी लेकर वे अपने वृद्ध पिता और उस छोटेसे एक वर्षके बच्चेको लिये हुए भरतपुर चले आये। घर आकर उन्होंने उस छोटे बच्चे के पालनेके लिये एक धाय नियत की, जो बडी साव-धानी से उस बच्चे का पालन-पोषण करने लगी। आरेसे आते समय उदयभानु बाबूने अपने अनुज विश्वनाथको वही छोड दिया था, क्योंकि उसकी परीक्षाके दिन बहुत निकट थे। घर आनेपर उदयभानु बाबूका मन किसी प्रकार बदला हुआ रहता था। कुछ समय तो वे ग्रामीण बन्धुओंसे मिलनेमें व्यतीत करते,और कुछ समय बैठे समाचारपत्रोंके पढनेमें विताते थे। ग्रामीण बन्धुओंने मिलकर उनसे कई बार अनुरोधपूर्वक कहा, कि आप ही हमलोगोंसे बुद्धिविद्यामें श्रेष्ठ हैं। इसलिये आपके निकट हमलोगोंका निवेदन है कि कृपाकर हमलोगोंकी रक्षा करे, अत्याचारोंके चङ्गुलसे हमें बचावे। अन्यथा राज्यके अत्या-चारी अमलोंसे हमलोगोंका त्राण नहीं है। वे पशुसे भी हमको नीचा समझते और सदा मनमानी घरजानी किया करते हैं, कुछ कहने पर उलटे ही और बिगडते हैं। आगे बढने पर भी

हमारी कोई सुननेवाला नहीं है। ये हमलोगोंके बच्चों की शिक्षा का कोई प्रबन्ध होने नहीं देते। सब जगह धूम मचाये हुए हैं, कि भरतपुर-निवासी बड़े बदमाश हैं। अस्तु, अब आपको इस ग्रामकी शुभचिन्ता करनी चाहिये। आगे जैसा आप उचित समझें; करें। प्रति दिन कोई न कोई व्यक्ति उदयभानुके निकट ग्रामीण कचहरीके गुमास्ता साहब की शिकायत लेकर आही जाता था। कभी कोई कहता कि साहब! गुमास्ताजीने मुझसे पचास रुपये दण्डके रूपमें मार-पीटकर अभी वसूल किये हैं। कोई कहता कि उसने हमसे रुपयेमें चार सेरकी दरसे घी वसूल किया है। कोई कहता, कि उसने अपनी गौओंसे हमारी कृषि चरा डाली है। इसी प्रकारकी अनेक बातें सुनते सुनते उदयभानु को बड़ी करुणा उपजी। उन्होने सोचा कि यह नश्वर शरीर योंही किसीन किसी दिन अवश्य नष्ट होही जायेगा। यदि यह देश- और बन्धुओंके कार्यमें लग जाय, तो सार्थक हो जाय। अपना पेट हो पालकर मरजाना निरर्थक है। समाचार-पत्रोंके पढ़ते रहनेसे ही उनके मनमें यह भाव उत्पन्न हो चुका था। अतएव इन्हीं सब विचारोंसे उन्होंने एक वर्ष की छुट्टी और ले ली।



आठवाँ परिच्छेद



दिनके आठ बज गये थे। उदयभानु बाबू अनेक जरूरी कार्योंसे निपटकर बाहर जानेको थे, किन्तु अभीतक उनके बच्चेकी धाय नहीं आयी थी, इसीसे रुके थे। बच्चा भूखसे चिल्ला रहा था। उनके वृद्ध पिता लोकनाथ बाबूने नौकरको कई बार धायके घर भेजा, लेकिन तौभी वह नहीं आयी। अन्तमें विवश हो वे अपने ही हाथसे गायका दूध बच्चेको पिलाने बैठे। उदयभानु बाबू अपना कोट-मुरेठा लिये बाहर निकलनेहीको थे, कि उधरसे उनके घरकी धाय रोती चिल्लाती हुई उनके आगे आगिरी। उन्होंने उसको अनेक प्रकारसे सान्त्वना देकर पूछा, "क्यों, क्या बात है?"

धायने कहा,—"बाबू साहब! मेरे लड़केको गुमास्ताजीने खूब पीटा है और बाधकर कोठरीमें बन्द किये हुए हैं।"

उदयभानु—क्यों?

धाय—लगानके लिये।

उदयभानु—लगान कितनी देनी पड़ती है?

धाय—मालिकके लिये दो रुपये, और गुमास्ताजी तथा अन्यान्य अमलेके लिये चौदह रुपये। लगानके अतिरिक्त दश



रुपये में देती हूं, लेकिन वे चोदहसे नहीं घटते, इसोलिये मेरे बच्चेपर इतनी मार पड़ी। और न मालूम वह क्या करेगा?

धायके मुखसे इतनी बातें सुनते ही उदयभानु बाबू बहुत दु:खी हो बोले—"जिस देशके निवासियोंका अपने बन्धुओंके साथ ऐसा व्यवहार है, उसकी दुर्गति क्यो न हो? स्वार्थ तू भी धन्य है। भाईसे भाईका खून चुसवानेमें भी तू आगा पीछा नहीं करता। लोग विदेशियोहीके मत्थे कलङ्कका टीका लगाते हैं। जरा अपने हृदयपर हाथ रख अपने देशबन्धुके व्यवहारके विषयमें तो कहें कि यथार्थमें किसके द्वारा हमारी अथवा हमारे देशकी अधोगति हो रही है? यदि हमलोग आपसमें बन्धुभाव रखें, एकका सर्वनाशकर अपनी श्रीवृद्धि न चाहें, तो क्यो देशमें इस प्रकारका आर्त्तनाद सुनाई पड़े? मेरी दृष्टि जिस ओर जाती है, उसी ओर अपने देश-भाईको दूसरे भाईका खून चूसते देखता हूं। वह उनके साथ व्यर्थका झगडा खडाकर स्वार्थ साधता है और बाहरवालेको भी वैसा करनेका मौका देता है। आप जिस ओर देखिये, चाहे कोई रेलवे कर्मचारी हो, चाहे पुलिसविभागमें रहनेवाला हो, अथवा कोई देशी-राज्यों हीका कर्मचारी क्यो न हो, सबके सब अपने देशहीके हैं, परन्तु अपने भाइयोका ही गला घोंटनेमें बहादुरी दिखलाते हैं। नहीं तो क्या कारण है, कि सौ रुपये महीनेकी अध्यापकी छोड लोग तीस रुपये मासिकपर रेलवे, पुलिस, और देशी राज्योंकी नौकरीकी ओर छलांगें मारते हैं? इसी प्रकार कुछ देर विचार



करनेके बाद उदयभानु बाबूने गुमास्ताजीके नामसे एक पत्र लिख दिया कि आप कृपाकर इस धायके लडकेको छोड दें। इसके यहाँ जो कुछ लगान बाकी है, वह मैं आपको आजही किसी वक्त चुका दूँगा।" पत्र लेकर धाय राजकी कचहरीकी ओर चली गयी।

भरतपुर गया-जिलेके अन्तर्गत एक छोटासा ग्राम है, जो एक साधारण जमीनदार बाबू अनर्थनारायण जीकी जमीन दारीके अभ्यन्तर है। अनर्थजीके जितने कारिन्दे थे, सबके सब यथार्थमें अनर्थके मूल थे। इसीसे उनकी जमीनदारीके भीतर कही शान्ति नहीं थी। भरतपुरके गुमास्ता जमीनदार साहबके अपने सम्बन्धी थे, इसी कारण वहा की प्रजापर जोर जुल्म करनेमें किसी प्रकारका भय नही करते थे।

धायने उदयभानु बाबूका पत्र लेजाकर गुमास्ताजीके आगे रख दिया। गुमास्ताजी पत्र पढते ही शेषावतार हो गये। आज्ञा दी, कि इसको मार-पीट कर बाहर निकाल दो। उन्होंने क्रोधके आवेशमें पत्र फाडकर फेंक दिया। साथ ही पत्र लिखनेवाले उदयभानु बाबूको भी ऊँचनीच बाते कहीं। धायने मार खाकर रोती पीटती उदयभानु बाबूके निकट आकर सब बातें उन्हे सुना दीं। सुनते ही उदयभानु बहुत बिगड़कर बोले,—"मैं उस नराधमकी नीचताका प्रायश्चित्त अभी कराये देता हूं। जा, तू सडकके किनारे ठहरना। धाय सडककी ओर गयी और उदयभान बाइसिकिल लिये न मालूम किधर गये।

गुमास्ताजीको पीछे अपने किये पर पश्चात्ताप हुआ कि हमने एक भले आदमीको क्रोधमें आकर व्यर्थ ही कड़ी बातें क्यों सुना दीं ? न मालूम उस धायने जाकर क्या कहा होगा ? अपने पटवारियोंके निकट बैठ वे इसी विषय की बातें कर रहे थे कि प्यादेने आकर खबर दी कि दारोगा साहब आरहेहैं। बिना किसी प्रयोजनके दारोगा साहबके आनेकी बात सुनकर गुमास्ताजी विचारमें पड गये कि क्या बात है ? इतनेहीमें देखते क्या हैं कि एक बाइसिकिलपर दारोगाजी, और दूसरीपर एक अपरिचित युवक, दो तीन कनिष्टवल और सबके पीछे वही धाय, जो कुछ देर पहले अपमानित करके निकाली जा चुकी थी, आरही है। दारोगाजीने कचहरीमें पहुँचकर धायसे पूछा—"बताओ, तुम्हारा लड़का कहाँ बाँधा गया है ?" दारोगाजीके मुखसे इतनी बातें निकलतेही गुमास्ताजीका प्राण ओंठोंपर आने लगा। धायने एक बन्द कमरेकी ओर सकेत कर दारोगाजीसे कहा कि इसी कमरेमें मेरा लड़का बन्द है। दारोगाजीने गुमास्ताजीसे ताली मँगवा कर कोठरी खुलवायी। कोठरीका दृश्य देखतेही उनको गुमास्ताके अत्याचारका पता लग गया। उन्होंने कमरेमें पांच-सात व्यक्तियोंको हाथ-पैर बांधे पड़ा हुआ पाया। उसीमें धायका लड़का भी उसी बन्धनावस्थामें मिला। बन्धन खोलते ही सबके सब दारोगा साहबके निकट फूटफूट-कर रोने लगे। उनकी पीठपर ऐसी मार पड़ी थी, कि चमड़े उधड़ गये थे। पुलिस-सबइन्सपेक्टरने सबको बन्धन मुक्त

किया तथा उनका बयान ले गुमास्तेको गिरफ़ार कर लिया। गुमास्ता पीछे जमानतपर छोड दिये गये। उदयभानु बाबूने उनसे उसी समय कहा,—"आशा है, अब आप अपने किये कर्म्म का प्रायश्चित्त कर ले गे।" उदयभानु बाबूकी बात उनके हृदयमें तीरसी चुभ गयी। प्रकटमें उन्होने कहा,—"अब आप क्षमा करें, मुझसे भूल हुई, मैं आपसे परिचित नहीं था।"

गुमास्ताजीकी बातपर उदयभानु बाबूको दया आयी और उन्होंने मुकद्दमेकी पैरवी छोड दी, जिससे बेचारे गुमास्ताजीने रिहाई पायी। इस मुकद्दमेसे निर्दोष छूट जानेपर गुमास्ताजी बुढोले सर्पकी भांति उदयभानु बाबूके पीछे पड गये, किन्तु ऊपरसे बहुत मिले रहते थे और भीतर ही भीतर अपनी घात अचूक बैठाने के यत्नमें लगे रहते थे। जबसे गुमास्ताजीपर मुकद्दमा चला, तभीसे वे प्रजासे अत्यन्त मिल गये थे, किसीपर किसी प्रकारका अत्याचार नहीं करते थे, जिससे प्रजाके मनमें विश्वास सा हो गया कि अब ये ठीक हो गये। पर गुमास्ता जी चुप नहीं थे, वे भीतर ही भीतर अपना कार्य ठीककर राह साफ करनेकी फिक्रमें लगे हुए थे।

उदयभानुबाबूने वृद्ध पिता और छोटे मातृहीन पुत्रको साथ ले, पुन आरे जानेका विचार कर लिया। जानेकी सब तैयारिया हो गयी, गठरिया बन्धवायी जा चुकीं। वे ग्रामीण बन्धुओंसे हिल-मिलकर विदा हो चार बजे भोरको भरतपुर छोडनेको थे। भोजनकर वे अपने कमरेमें जा लेटे। वृद्ध भी उसी

कमरेमें पीलके साथ दूसरी चारपाईपर पटे थे। ठीक चार बजे नौकरने गाडी लाकर मालिकको पुकारा। नौकरकी सुन वृद्धकी आखें खुली। उन्होंने उदयभानु बाबूको कई बार पुकारने पर कुछ उत्तर नहीं मिला। अन्तमें वृद्धने अपनी चारपाईसे उठ उदयभानु बाबू की चारपाईके निकट जाकर पुत्रका हाथ पकड उठाना चाहा। ज्यों ही वृद्ध लोकनाथ बाबूने अपना हाथ उदयभानु बाबूकी देहपर रखा, त्योंही पडे। उनका हाथ खूनसे बिलकुल भीग गया, किन्तु अन्धकारमें दिखाई नहीं पडनेसे वृद्धने लालटेन जलायी। लेकर लोकनाथ बाबू उदयभानु की चारपाईके निकट गये, किन्तु वहाका दृश्य देखते ही चीख मारकर जमीनपर मूर्च्छित हो गिर पडे। नौकर यह गोलमाल देखकर कमरेके भीतर आया। वहाका दृश्य देख वह कुछ देर बाद लोकनाथ बाबूको जलके छींटे और हवा कर होशमें ले आया। धीरे-धीरे यह बात फैल गयी। सब लोगोंके हृदय पर इस दुर्घटनासे बडी गहरी चोट लगी। दर्शकों की भीड लग गयी। गुमस्ताजी उदयभानु बाबूकी लाश देखने आये। अनेक अनुसन्धान कर भी घातकका पता नही लगा। न मालूम किस दुष्टने च... भाँति उनकी हत्या कर डाली। यों तो अनुमानसे किसीने हत्यारेका पता लगा ही लिया, किन्तु भयसे किसी को कुछ कहनेका साहस नहीं हुआ और फिर होता ही कैसे किसीने अपनी आखों किसीको खून करते देखा भी तो नहीं था

दारोगा इन्सपेक्टरके लाख सिर मारने पर भी कुछ पता नहीं लगा। यथासमय विश्वनाथको भी भ्राताकी हत्याका समाचार मिल गया। इस दुर्घटनाका समाचार पाते ही आरेके शिक्षित समाजमें भो बड़ा शोक फैला। विश्वनाथ मैट्रिक परीक्षा दे चुका था। समाचार पाते ही वह विह्वल होता, रोता बिलखता हुआ घर पहुँचा। उसको देखते ही वृद्ध लोकनाथका शोक और बढ़ गया। टोले-मुहल्लेके स्त्री पुरुषोंने अनेक प्रकारसे बोध-प्रबोध देकर विश्वनाथ और वृद्ध लोकनाथको धैर्य बन्धाया।

ज्यों ज्यों समय बीत गया, त्यों त्यों उन लोगोंका शोक भी घटता गया। यथासमय विश्वनाथका परीक्षाका फल निकल गया। उसने परीक्षामें सफलता पायी सही, किन्तु उदय-भानुके बिना उसको आगेका पढ़ना रुका हुआ दिखाई पड़ा। उस दिन विश्वनाथ पुनः अपने अग्रजके लिये बहुत रोया। लोकनाथ बाबू वृद्ध हो ही चुके थे। दो वर्षका अबोध भ्रातृपुत्र माताके बिना अनेक कष्ट पा रहा था। घरमें कोई स्त्री नहीं रहने से खाने पकानेका भी कोई प्रबन्ध नहीं। इन सब कष्टोंको देख विश्वनाथ अधीर सा हो गया। उसने अपनी दुःख गाथा अपने पड़ोसियों को भी न सुनायी। किसी किसीको उसकी विपत्ति पर बड़ा दुःख हुआ। वे लोग कई प्रकारसे उसको सहायता करने को भी तैयार हुए। कई पड़ोसियोंने उसके वृद्ध पिता तथा मातृ-पितृ-हीन छोटे भतीजेकी रक्षाका भार उठाकर विश्वनाथको पढ़नेके लिये बाँकीपुर भेज दिया। विश्व-

नाथ नोमराजी होकर पटने गया। वह आदमी खर्चके लिये लोकनाथ बाबूको कुछ रुपया भी देता गया।

इन दिनो लडकोंको अंगरेजी पढानेमें कितना खर्च होता है, इसको भली भांति वही लोग जानते हैं, जिनको पढने या पढानेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। साधारण स्थितिवाले मनुष्योंका अङ्गरेजी पढना तो बिल्कुल असभव हो ही गया है, क्योंकि जो लोग कठिनतासे अपना जीवन निर्वाह करते हैं वे लोग किसी नगरमें अपने लडकेको अंगरेजी पढनेके लिये भेजकर प्रतिमास तीस चालीस रुपये कहाँसे दे सकते हैं? अब पाठक ही विचार करें, जिस विश्वनाथको खानेका भी ठिकाना नही है, वह किस प्रकार तीस चालीस रुपये मासिक खर्च करके पढ सकता है? किन्तु उद्योगी पुरुषको कहीं किसी प्रकारका कष्ट नहीं उठाना पडता, ईश्वर अवश्य उसको सहायता पहुँचाते हैं। ईश्वरकी कृपासे विश्वनाथको भी अधिक दिनोंतक कष्टके साथ नही भटकना पडा। एक भद्र-पुरुपके यहां दो छोटे छोटे बच्चोंके पढानेके लिये, भोजन और कालेज की फीस मिलने लगी। विश्वनाथ जिसके यहाँ पढाता था, धीरे धीरे उसके घरवाले उसके कार्य पर बहुत प्रसन्न हुए।

बाबू ललिताप्रसादजी डिष्ट्रिक्ट-बोर्ड-औफिसमें हेडक्लार्क थे। उन्हींके दो छोटे-छोटे लडकोंको विश्वनाथ पढाता था। जिस दिनसे ललिता बाबू तथा उनकी धर्मपत्नीको पता लगा, कि विश्वनाथ, भरतपुरवाले उदयभानु बाबूका छोटा भाई है, उसी

दिनसे वे लोग विश्वनाथको अपने पुत्रके समान प्यार करने लगे। उदयभानुका स्मरण होते ही ललिता बाबूकी धर्मपत्नी 'रूपवती'को मुगलसरायवाली पुलिसकी वह दुर्घटना स्मरण, आजाती, जिससे उदयभानु बाबूके द्वारा उसने रक्षा पायी थी। विश्वनाथके द्वारा उदयभानु बाबू तथा उनकी धर्मपत्नी गायत्री प्रभृतिके मृत्यु-समाचार सुनकर रूपवती बहुत दु खी हुई।

विश्वनाथ ललिता बाबूके दो छोटे-छोटे पुत्रोंको सुबह शाम पढाया करता और दश बजे कौलेजमें पढने जाता था। विश्वनाथके शील-स्वभावसे ललिता बाबू उससे बहुत प्रसन्न रहा करते थे। उनकी आन्तरिक इच्छा थी, कि विश्वनाथका विवाह अपनी पुत्री उत्तरासे कर दूँ। किन्तु अभीतक किसी पर उन्होंने अपने मनका भाव नहीं प्रकट किया था। उत्तराने भी जबसे विश्वनाथको देख लिया था, तभीसे उसके हृदय-क्षेत्रमें उसके प्रति प्रेम बीज अङ्कुरित हो गया था। विश्वनाथ भी उत्तराको बड़े स्नेहकी दृष्टिसे देखता था।

दो-तीन वर्षों से लगातार पटनेमें श्लेष्म-ज्वरका विशेष प्रकोप हुआ करता है। इस वर्ष भी शहरमें ज्वर उसी प्रकार फैला हुआ है। प्राय प्रत्येक घरमें कोई न कोई उस ज्वरके चङ्गुल में अवश्य ही फँसा दीखता है। ललिता बाबूके यहा तो एक व्यक्ति भी निज्वर नही रहा। विश्वनाथके अतिरिक्त सबके सब ज्वरमें पड़े थे। इस ज्वरमें नियमपूर्वक दो-तीन दिनोंतक उपवास कर लेनेहीसे विगत-ज्वर हो जानेकी विशेष आशा



नाथ नोमराजी होकर पटने गया। वह-आदमी खर्चके लिये लोकनाथ बाबूको कुछ रुपया भी देता गया।

इन दिनो लडकोको अंगरेजी पढानेमें कितना खर्च होता है, इसको भली भाति वही लोग जानते हैं, जिनको पढ़ने या पढानेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। साधारण स्थितिवाले मनुष्योंका अङ्गरेजी पढना तो विलकुल असमभव ही हो गया है, क्योंकि जो लोग कठिनतासे अपना जीवन निर्वाह करते हैं, वे लोग किसी नगरमें अपने लड़केको अंगरेजी पढनेके लिये भेजकर प्रतिमास तीस चालीस रुपये कहाँसे दे सकते हैं? अब पाठक ही विचार करें, जिस विश्वनाथको खानेका भी ठिकाना नही है, वह किस प्रकार तीस चालीस रुपये मासिक खर्च करके पढ सकता है? किन्तु उद्योगी पुरुषको कही किसी प्रकारका कष्ट नही उठाना पडता, ईश्वर अवश्य उसको सहायता पहुंचाते हैं। ईश्वरकी कृपासे विश्वनाथको भी अधिक दिनोंतक कष्टके साथ नहीं भटकना पडा। एक भद्र-पुरुषके यहा दो छोटे छोटे बच्चोंके पढानेके लिये, भोजन और कालेज की फीस मिलने लगी। विश्वनाथ जिसके यहाँ पढ़ाता था, धीरे धीरे उसके घरवाले उसके कार्य पर बहुत प्रसन्न हुए।

बाबू ललिताप्रसादजी डिष्ट्रिक्-बोर्ड-औफिसमें हेडक्लार्क थे। उन्हींके दो छोटे-छोटे लडकोंको विश्वनाथ पढ़ाता था। जिस दिनसे ललिता बाबू तथा उनकी धर्मपत्नीको पता लगा, कि विश्वनाथ, भरतपुरवाले उदयभानु बाबूका छोटा भाई है, उसी



दिनसे वे लोग विश्वनाथको अपने पुत्रके समान प्यार करने लगे। उदयभानुका स्मरण होते ही ललिता बाबूकी धर्मपत्नी 'रूपवती'को मुगलसरायवाली पुलिसकी वह दुर्घटना स्मरण आजाती, जिससे उदयभानु बाबूके द्वारा उसने रक्षा पायी थी। विश्वनाथके द्वारा उदयभानु बाबू तथा उनकी धर्मपत्नी गायत्री प्रभृतिके मृत्यु-समाचार सुनकर रूपवती बहुत दु खी हुई।

विश्वनाथ ललिता बाबूके दो छोटे-छोटे पुत्रोंको सुबह शाम पढाया करता और दश बजे कौलेजमें पढने जाता था। विश्वनाथके शील-स्वभावसे ललिता बाबू उससे बहुत प्रसन्न रहा करते थे। उनकी आन्तरिक इच्छा थी, कि विश्वनाथका विवाह अपनी पुत्री उत्तरासे कर दूं। किन्तु अभीतक किसी पर उन्होंने अपने मनका भाव नहीं प्रकट किया था। उत्तराने भी जबसे विश्वनाथको देख लिया था, तभीसे उसके हृदय-क्षेत्रमें उसके प्रति प्रेम बीज अङ्कुरित हो गया था। विश्वनाथ भी उत्तराको बड़े स्नेहकी दृष्टिसे देखता था।

दो-तीन वर्षों से लगातार पटनेमें श्लेष्म-ज्वरका विशेष प्रकोप हुआ करता है। इस वर्ष भी शहरमें ज्वर उसी प्रकार फैला हुआ है। प्राय प्रत्येक घरमें कोई न कोई उस ज्वरके चङ्गुल में अवश्य ही फँसा दीखता है। ललिता बाबूके यहा तो एक व्यक्ति भी विज्वर नहीं रहा। विश्वनाथके अतिरिक्त सबके सब ज्वरमें पड़े थे। इस ज्वरमें नियमपूर्वक दो-तीन दिनोंतक उपवास कर लेनेहीसे विगत-ज्वर हो जानेकी विशेष आशा



वर्षके मातृ-पितृ हीन पौत्रके पालनके कष्ट, उन्हींको उठाने पड़े। साथ ही अर्थ संकट भी सतानेको तैयार था। उदयभानु बाबूकी कमाईके बचे चार-पाँच सौ रुपये कितने दिन चलते? सब तरहके कष्ट सहकर भी दुध-मुँहे बच्चेको पालना ही वृद्धने अपना कर्त्तव्य समझ लिया था। कभी-कभी उनकी इच्छा, होती, कि अब विश्वनाथका विवाह हो जाये तो अच्छा हो, किन्तु मुझ दरिद्रके लड़केको कौन अपनी लड़की देगा, यही सोच कर वे बहुत चिन्तित हो जाया करते थे। ग्रामवाले यथा साध्य वृद्ध लोकनाथकी सहायता किया करते थे। उनकी सारी आशा विश्वनाथ पर लगी थी। उन्हे विश्वास था, कि कभी न कभी वह हमलोगोंके कष्ट अवश्य दूर करेगा।

एक दिन समय पाकर रूपवतीने अपने पतिदेव ललिता प्रसादजीसे अपनी पुत्री उत्तराके विवाहकी बात छेड़ते हुए कहा,—"अब तो उत्तरा विवाहके योग्य हुई। लड़केकी खोज क्यों नहीं करते?"

ललिता—मैं चुप नहीं बैठा हूँ पर एक बात तो, मैं तुमसे कहना भूल ही गया था। वह यह, कि क्या विश्वनाथ उत्तराके योग्य नहीं है?

रूपवती—मैं भी यही कहनेको थी। आप विश्वनाथके पितासे जाकर मिलें और बातचीत ठीक करें।

ललिता—पहले, विश्वनाथके मनको जाँच करलो यह नहीं चाहता हो, तो अच्छा नहीं होगा।

रूपवती—मैं विश्वनाथ और उत्तरा दोनोंके मनके भावोंको देखलूँगी। आप बातें तो करें।

ललिता—इसमें एक बखेड़ा और भी है।

रूपवती—क्या ?

ललिता—वह यह, कि विश्वनाथके पिता उच्च कुलके हैं, हमारी लडकीसे अपने लडकेका विवाह करना स्वीकार करेंगे या नहीं ?

रूपवती—आप इसकी चिन्ता न करें। मैं इन दोनों भाइयोंके स्वभावसे समझती हूं, कि ये लोग सहृदय हैं। इनके पिता भी अवश्य आपकी प्रार्थना स्वीकार कर लेंगे।

ललिता बाबूने भरतपुर जानेका विचार कर लिया। इधर रूपवतीने एक दिन उत्तरासे कहा, "बेटी ! अब मैं तुझे अधिक नहीं पढा सकती। जिस समय सुरेन्द्र और उपेन्द्रका पढना हो जावे, उस समय तू जाकर विश्वनाथसे पढ लिया कर। उसको दूसरा मत समझ। वह अपने ही घरका लडका है। यदि हमलोगोंकी ज्वरावस्थामें वह सेवा नहीं करता तो न मालूम क्या दुर्गति होती ? लडका बडा सहनशील और सहृदय है।"

उत्तरा माताकी बातोंका अनुमोदन मन ही मन कर रही थी। वह तो चाहती ही थी, कि माता मुझे उनसे बोलनेकी स्वतंत्रता दे; क्योंकि उसने प्रथम ही अपनेको विश्वनाथके चरणोंकी दासी समझ लिया था। माताकी आज्ञा पाते ही

उत्तराने उत्तरमें हर्षित चित्तसे कहा,-"मैं आजहींसे उनके निकट पढना आरम्भ कर दूँगी।"

जबसे उत्तरा की बीमारी अच्छी हुई, तभीसे उसने विश्वनाथसे बोलनेमें किसी प्रकारका संकोच नहीं किया था। किन्तु विश्वनाथ उसके प्रश्नोंका उत्तर देते समय सर नीचा कर लिया करता था। उसकी यह अवस्था देख उत्तरा एकान्तमें चुट किया भी लिया करती थी। वह कहती—"मास्टर साहब! आप मुझे देखकर इतना लजाते क्यों हैं? आपकी लज्जासे प्रतीत होता है, कि आपको ब्रह्मा स्त्री बना रहे थे, किन्तु भूलसे उन्होंने पुरुषका शरीर गढ़ दिया।" उत्तराकी बातें सुन, विश्वनाथ हँसकर कहता,-"और तुम पुरुष होनेको थीं।" इतनी बात भी वह ओठ दबाये हुए ही बोलता और तुरत ही सरक जाता।

एक दिन आठ बजे रातके समय विश्वनाथ अपने कमरेमें लैम्पके निकट बैठकर समाचारपत्र पढनेमें मग्न था। उसके छात्र पढकर जा चुके थे, उसी समय महिलादर्पणका विशेषाङ्क लिये उत्तराने कमरेमें प्रवेश किया। वहां आ, कुछ समय तक वह चुपचाप विश्वनाथके पीछे खडी रही। विश्वनाथ एकाग्र-चित्त हो समाचारपत्र पढनेमें ऐसा लीन था, कि उसे उत्तराके आनेकी कुछ खबर भी नहीं लगी। उसको इस प्रकार ध्यानस्थ देख, उत्तराने हँसकर कहा—"मास्टर साहब! क्या मुझे भी पढानेकी कृपा करेंगे?"

उत्तराकी बातें सुन विश्वनाथ चौंक कर बोला,—"ऐं! तुम कबसे यहाँ खडी हो?"

उत्तरा—कुछ देरसे।

विश्वनाथ—किस लिये कष्ट उठाया है?

उत्तरा (मुसकुराती हुई)—आपसे पढने आयी हू।

विश्वनाथ—मैं तुमको नहीं पढा सकूँगा।

उत्तरा—मेरे भाइयोंको कैसे पढाते हैं?

विश्वनाथ—वे अभी लडके हैं।

उत्तरा—"तो मैं क्या बुड्ढी हू? मुझसे आप डरते क्यों हैं?" कहकर फिर मुसकुराने लगी।

विश्वनाथ—तुम्हे बुड्ढी कौन कहता है? पर विना माताजीकी आज्ञा पाये मैं तुम्हे नहीं पढा सकता।

उत्तरा—आप मुझसे अप्रसन्न क्यों हैं, महाशय?

विश्वनाथ—इसमें अप्रसन्नताकी तो कोई बात नहो है, माताजीकी सम्मति पाकर ही कार्य करना उचित है।

उत्तरा—मै माताजीको सम्मति लेकर आयी हू।

विश्वनाथ—तुम चलो, मै अभी आता हू, माताजीसे पूछ लूँगा।

उत्तरा—आप तो व्यर्थ ही डरते हैं।

विश्वनाथ—मैं डरता नही, पर दूसरेकी वस्तु विना उसके अधिकारीकी आज्ञा पाये छू नहीं सकता। तुमको पढानेमें विना माता-पिताकी आज्ञा पाये अनेक प्रकारके भयकी आशंका है।

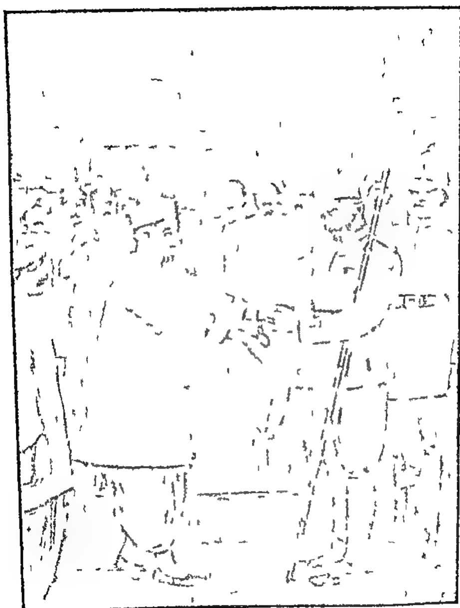
बालकको हठ करते देख वृद्ध बोला—"बेटा, तेरी चाची तुझे जूता खरीद देगी।"

"चाची जूता खरीद देगी।" यह सुनते ही लड़का चारपाईसे उठ अपनी चाचीकी गोदमें जा बैठा और जूतेके लिये हठ करने लगा। युवती बालकको हठ करते देख बोली—कल तुमको भी वैसा ही जूता मगवा दूँगी। अभी बाहर जाकर खेलो। अभी बाबूजीकी तबीयत अच्छी नही है।"

"कल जूता मगवा दूँगी" सुन, बालक युवतीकी गोदसे उठ, बाहर चला गया।

पिताकी चिन्तनीय अवस्था देख, युवक अधिक अधीर हो उठा। उसको पिताकी मृत्युकी उतनी चिन्ता नही थी। चिन्ता थी तो केवल अपनी दरिद्रताकी, क्योंकि उस समय उसका हाथ बिलकुल खाली था, ओपधिका मूल्य चुकाना भी कठिन हो रहा था, युवतीने उसे कई बार वैद्यजीको बुलाने कहा, पर युवकको बिना रुपया लिये वैद्यराजके यहां जानेकी हिम्मत नहीं होती। वैद्यजीका वह रौद्र रूप, भयङ्कर मुख-मुद्रा स्मरण आतेही वह डर जाता। युवक इसी चिन्तामें था। लड़का पुन दौड़ता हुआ हाथमें किसीका नया जूता लिये चाचीके निकट आकर बोला—"चाची। मुझको ऐसाही जूता मंगवा देना।"

लड़केकी मधुर बातें सुनते ही युवतीने प्रेमपूर्वक उसे गोदमें ले मुख चूमकर कहा—"अच्छा, मुन्नू। तुमको भी ऐसाही जूता



देश सेवककी गिरफ्तारी

[illegible]

[illegible]

[illegible]

मंगना दूँगी।" लड़का चाचीकी बातें सुन प्रसन्न हो उसके गलेसे लिपट गया।

जैसे तैसे युवक-युवतीने वृद्धकी सेवामें वह रात व्यतीत की। प्रातःकाल वृद्धकी अवस्था पहलेसे कुछ बिगडी सी दिखाई पडी। युवतीको मालूम हो चुका था, कि आज बिना रुपया लिये वैद्यजी नहीं आये गे। उधर बच्चा जूतेके लिये अलग ही हठ कर रहा है। यदि आज उसको जूता नहीं मिलेगा, तो वह बुरीतरह जिद करेगा। मुझसे अबोध मातृ पितृ हीन बालकका रोना नहीं सुना जायेगा। इधर हाथमें रुपया नहीं है। ऐसी अवस्थामें इन दो एक आभूषणोंको रखकर ही क्या करूँगी? इसी विचारसे युवतीने अपना "कर्णफूल" उतारकर युवकके हाथमें देते हुए कहा,—"अभी आप इसे बन्धक रख, बाबूजीको दवा करें और मदनके लिये भी एक जोडा जूता लादें। वैद्यराज जी भी बिना रुपयेके आते नहीं। अस्तु उन्हें भी रुपया देकर शीघ्र ले आनें, क्योंकि बाबूजी की हालत बराबर बिगडती ही जा रही है, कलसे तो आजकी अवस्था और भी बुरी मालूम पडती है।"

युवक-युवतीकी बातें सुन लम्बी साँस छोड़ता हुआ बोला—"प्यारी। मुझसे तुम्हारे आभूषण अब नहीं बेंचे जासकेंगे। एक-एक करके तो अनेक बेच चुका। यदि अब इन एक दोको भी नहीं रहने दूँ,—तो मेरे जेसा अकर्मण्य इस संसारमें दूसरा कोई नहीं। इनमेंसे एक भी आभूषण तो मेरा बनवाया हुआ नहीं था!"

युवती—आप सङ्कोच न करें। इससे बढ़कर इनका और उपयोग नहीं हो सकता कि, समयपर शरीरकी शोभा बढ़ायें और आवश्यकता पड़ जानेपर मान-मर्यादाकी रक्षा करें।

युवकने और कोई युक्ति न देख युवतीके अनेक हठ करनेपर उसके "कर्णफूल" बन्धक रखकर भ्रातृपुत्र मदनके लिये जूता लिया और वैद्यराजकी पूजाकर पूज्य पिताके लिये औषधिका प्रबन्ध किया। लड़का जूता पाकर दौड़ता हुआ अपने बालसखा मोहनको दिखाने ले गया।

पाठकोंको बतलानेकी आवश्यकता नहीं होगी, कि युवक वृद्ध लोकनाथका एकमात्र पुत्र, विश्वनाथ था और युवती ललिता बाबूकी पुत्री, विश्वनाथकी धर्मपत्नी, उत्तरा थी। जबसे उत्तरा अपने पतिके घर भरतपुर आयी, तभीसे उसके कष्टोंका श्रीगणेश हुआ, किन्तु वह सुशीला कभी घबराती नहीं, बल्कि यत्नपूर्वक उनको दूर करने ही की चेष्टा करती रही है। पाठक पढ़ हो चुके हैं, कि वह एक-एककर अपने सब आभूषण बन्धक रखकर ससुरकी औषधि तथा घरका खर्च चलाती रही है। उसने कभी अपने मुखपर चिन्ताकी छायातक नहीं आने दी। लोकनाथ बाबूके पास स्थायी सम्पत्ति तो कुछ थी नहीं, बड़े पुत्रकी जीवितावस्थातक किसी प्रकार सुख था, किन्तु उनकी मृत्युके बाद हो भोजनादिके लिये भी कष्ट उठाना पड़ा। विश्वनाथ भी अभी पढ़ ही रहा था, कुछ उपार्जन नहीं करता था। ऐसी अवस्थामें यह अर्थ-संकट आ पड़ा। यह भाग्यका खेल है!

उत्तराके आभूषण बेंचकर विश्वनाथने वैद्यराजको रुपये देकर औषध ली और उन्हें लेजाकर पिताकी नाडी दिखलायी। वैद्यराजने युवकसे रुपया ऐंठ, वृद्धको दश पन्द्रह दिनोंतक उसी अवस्थामें रखनेके लिये अधिक यत्न किया। यह इस मतलबसे, कि चलते समय भी वृद्धकी बदौलत बीस पचीस रुपये जोही मिल जाये, वही ठीक है। इसी आशासे वृद्धके लिये वैद्यजीने दो-तीन कीमती दवाओंका भी प्रयोग किया।

दिनके तीन बज चुके थे। विश्वनाथ चिन्तित चित्त और म्लानमुख किये बाजारसे घरको आ रहा था। उसके हाथमें दो-तीन छोटी गठरियाँ थीं। वह अपने घरसे अनुमानत सौ कदम की दूरीपर होगा, कि उसका भ्रातुष्पुत्र 'मदन' दौडता हुआ उसके निकट आकर बोला, "चाचाजी! जल्दी घर चलो, चाची आपको बुलाती हैं। रह-रहकर बाबाकी आँखें बन्द हो रही हैं।"

मदनकी बात सुनते ही विश्वनाथ शीघ्रतापूर्वक घर आया। उसके आगे-आगे मदन भी दौड़ता हुआ आया। उत्तरा वृद्धको चम्मचसे गङ्गाजल पिला रही थी। पिताका अन्तिम समय निकट देख, विश्वनाथ बहुत घबराया। मदन दौडा आकर वृद्ध लोकनाथके सिरहाने बैठ उनका हाथ पकडकर बोला—"बाबा! तुम क्यों सोते हो? उठो, देखो, मैं अभी दौड़कर चाचाको बुला लाया हूँ।" मदनकी मधुर बातें सुनकर वृद्धने अपनी आँखें खोलीं। सामने अपनी पुत्रवधू और पुत्रको देख,उसने हाथ बढाया



और उन दोनोंको भी अपना हाथ उसपर रखनेके लिये क्षीणस्वरमें कहा। ज्योंही उत्तरा और विश्वनाथने अपना-अपना हाथ वृद्धके हाथपर रखा त्योंही बालक 'मदन'ने भी हँसते-हँसते अपना हाथ उनके हाथोंके ऊपर रख दिया। मदनका हाथ ऊपर पड़ते ही वृद्धने अपनी आँखें बन्द करलीं। मदनने वृद्धकी ठुड्डी पकड़ कईवार जोरकी आवाजमें 'बाबा, बाबा' कहकर पुकारा और कुछ उत्तर नहीं पानेपर रोने लगा। उधर पिताको स्वर्ग-प्रयाण करते देख विश्वनाथ और उत्तरा भी चीख मारकर गिरपड़े। उनकी यह अवस्था देख, 'मदन' और भी विह्वल-हो रोने लगा। इससे विश्वनाथके घरमें तुमुल नादसे हाहाकार मच उठा। उसे सुनकर अनेक पड़ोसी स्त्री-पुरुष वहाँ दौड़ आये। सबने बोध प्रबोध देकर उनलोगोंको शान्त किया। विश्वनाथ और उत्तराके लाख प्रबोध देनेपर भी मदनने रोना बन्द नहीं किया, उसका सिसकना बड़ी देरतक जारी रहा।

ग्रामीण बन्धुओंकी सहायता तथा ललित बाबूके हाथ बटाने पर विश्वनाथने पिताके श्राद्ध-कर्मसे कुशलता पूर्वक निवृत्ति पायी। गाँववालोंके कहनेसे आवश्यकता समझकरही विश्वनाथने अपना एक आमका वृक्ष जलानेके लिये काटा था। पर इसके लिये उसने गुमास्तेकी आज्ञा नहीं ली थी, क्योंकि ऐसे समय उसकी आवश्यकता ही क्या थी? गुमास्ताजी तो इसी घातमें थे, कि कब मौका मिले, कि इन्हें धर दबाऊँ। बस फिर क्या था। गुमास्ताजीने दो-तीन प्यादोंको बुलाकर विश्व-

नाथको अपमानित करते हुए कचहरीमें उपस्थित करनेकी आज्ञा दी। आज्ञा पानेकी देर थी, कि प्यादे यमदूतकी भाँति क्रोध-मूर्त्ति बनाये, बड़े-बड़े लट्ठ लेकर विश्वनाथ बाबूके दरवाजेपर आये। वहाँ आ उन्होंने उन्हें कड़ेस्वर पुकारा। विश्वनाथ बाबू भोजन करने बैठे थे, इसीलिये उन्होंने कुछ उत्तर नहीं दिया। पुकारनेपर कुछ उत्तर नहीं पाकर प्यादे अण्डबण्ड बकते हुए हवेलीके भीतर प्रवेश करने लगे। उनको ऐसा करते देख, विश्वनाथने भोजन छोड़ दिया और बाहर आकर उनलोगोंको दरवाजेपर जानेके लिये बड़े जोरसे डाँटा। परन्तु प्यादोंने उनकी डाँटकी कुछ परवा न कर, उनको पकड़नेके लिये हाथ बढ़ाना चाहा। इसी समय भरतपुरके कई व्यक्ति, शोरगुल सुन वहाँ आ उपस्थित हुए। उनको आया देख, विश्वनाथका बल दूना बढ़ गया। वे भी आगे बढ़े। अब क्या था? दोनों दलोंमें खूब गुत्थम-गुत्थी हो गयी। प्यादोंपर भरपूर मार पड़ी, वे लोग गाँवकी कचहरीकी ओर प्राण बचानेके लिये भागे। पीछेसे ग्रामीणलोग भी उन्हें खदेड़ते हुए वहीं पहुँचे। प्रजाको आवेशमें लाठी लिये आते देख, गुमास्ताजी बहुत घबराये और वे बेचारे प्राण-रक्षाके लिये पाखानेकी ओर लपके जा रहे थे, कि इसी समय किसीने पीछेसे पुरस्काररूपमें उन पर भी एक लाठी जमाही दी। शरीरके लम्बे चौड़े गुमास्ताजी वहीं चित हो, दाँत निकाले, दीनता दिखाते हुए क्षमा-याचना करने लगे। भरतपुरकी प्रजाको वापस करते हुए विश्वनाथ घर लौटे।

युवक—एक नयी दोस्ती लगी है, उसी मिलके निकट इतना विलम्ब हुआ।

युवती—कुछ कहिये भी तो, कि आपके दोस्त हैं कौन ?

युवक हँसता हुआ युवतीका करस्पर्शकर बोला—"नहीं उत्तरे। उसका नाम मैं तुमको नहीं बताऊँगा। सम्भव है, कि उसका परिचय पाकर तुम दुःखी हो जाओ।

युवती—आप एक नहीं, अनेकों से मैत्री कीजिये, मैं कभी दुःखी न होऊँगी। आप निश्चय समझें। जिससे आपको प्रसन्नता होगी, मैं भी उसीमें प्रसन्न रहूँगी, जिससे आपको दुःख होगा, उसी से मुझेभी दुःखी समझें।

—पाठक समझ गये होंगे, कि ये युवक उत्तराके पतिदेव बाबू विश्वनाथ प्रसादजी हैं। पत्नी की बातें सुन, वे उससे पुनः प्रेम पूर्वक बोले—"तुम्हारे साहसको मैं धन्य समझता हूँ। तुम्हारी जैसी स्त्रियोंसे ही देशका उद्धार होने को है। यथार्थ मे तुम मेरे सुख से सुखी और दुःखमें दुःखी रहनेवाली हो। लो सुनो, सम्भवतः कल मैं जेल जाऊँगा, आजही दारोगा जीने मुझको बुलाकर कहा है, कि "यदि आप पाँच हजार रुपया लेकर गुमास्ताजीके मेलमें नहीं आइयेगा, तो कलहीसे आप, अपनेको बड़े घरका मेहमान समझिए।" आज रातभर मुझको विचारनेका समय दिया गया है; अभी मिल मण्डलीमें बैठ अभीतक इसीके विचारमें था, अब तुमसे भी पूछने आया हूँ। कहो, क्या करने कहती हो ?"

उत्तरा—नाथ। यह शरीर नश्वर है। यह, संसारमें सदा नहीं
[illegible]ा। तब फिर किस दिनके लिये यह पाप-सञ्चय करेंगे? रुपए
[illegible]ी काम नहीं देंगे। फिर कलङ्कका टीका क्यों माथे लगाते
[illegible] जाइये, प्रसन्नता पूर्वक वडे घरकी वायुका सेवन कीजिये;
[illegible]आपने चरखेसे अपने बच्चेका पालन पोषण करलूँगी।

[illegible] विश्वनाथ बाबूने उत्तराकी बातोंपर उसको धन्यवाद
[illegible]ा और कपड़े बदलनेके पश्चात् भोजन किया। पीछे
[illegible]राने भी भोजन कर विश्राम किया। दूसरे दिन सवेरे ही
[illegible]तीन कानिष्टबुल विश्वनाथ बाबूको बुलाने आये। उत्तरमें
[illegible]होंने कहा,—"तुमलोग सबइन्सपेक्टर साहबसे कहना, कि मैं,
[illegible]य मार्गपर खड़ा हूँ। आपलोग किसी प्रकारके प्रलोभनसे
[illegible] अभीष्ट मार्गसे विचलित नहीं कर सकेंगे।"

[illegible] कानिष्टबुलोंने ठीक उसीप्रकार दारोगाजीसे जाकर विश्वनाथ
[illegible] सन्देशा कह सुनाया। इस समाचारसे दारोगाको बड़ा
[illegible]ध हुआ। वे बिगड़ कर बोले- "अच्छा घबड़ाये नहीं, उनको
[illegible]का अच्छा प्रतिफल मिलेगा वे मुझे साधारण सबइन्सपेक्टर
[illegible]समझें," इतना कह कर उन्होंने न मालूम अपने अफसरको
[illegible] लिखा। लिखनेके तीसरे ही दिन पुनः यहां दोनों सब-
[illegible]इन्सपेक्टर कई चौकीदार प्यादोंके साथ विश्वनाथ बाबूको रोज-
[illegible]मरतपुर पहुँचे। ज्योंही विश्वनाथको उनके आनेका
[illegible]ाचार मिला, त्यों ही वे निर्भीकतापूर्वक उनके सामने उप-
[illegible]त होगये। सबइन्सपेक्टर साहबने प्यादोंको आज्ञा दी "इनको



हथकडी लगाओ, मैं इन्हें गिरफ्तार करने आया हूँ।"
विश्वनाथ बाबूने बडी खुशीसे अपने दोनों हाथोंको उनके आगे बढ़ाकर कहा—"आप प्रसन्नता पूर्वक मेरे हाथोंमें हथकडी डाल सकते हैं। मैं झूठ मूठके फन्द-फरेबोंसे डरकर सत्य मार्गसे कभी विचलित नही होऊँगा, कभी अत्याचारियोंके अत्याचारोंसे न डरूंगा, आप स्मरण रक्खें, अन्तमें दूधका दूध और पानीका पानीही होगा। यतो धर्मस्ततोजय।"

भरतपुरवासियोंके सामने ही विश्वनाथ बाबूके हाथोंमें हथकड़ी देकर पुलीस उन्हें ले गयी। गाँववालोंने जमानतपर उन्हें छुडानेके अनेक यत्न किये, किन्तु वे नही छूट सके। गुमास्ता जी इस समाचारसे बहुत प्रसन्न हुए। यथा समय विचारालयमें मामला विचारके लिये पेश किया गया। सशस्त्र सैनिकोंके साथ हाथमें जंजीर पहनाये विश्वनाथ बाबू उपस्थित किये गये। उनपर राजद्रोहका दोष लगाया गया था। विचारालयके सामने दर्शकोंकी खासी भाड लगी थी। विश्वनाथ बाबू हर्षित चित्तसे उन्नत मस्तक हो खडे थे, उनको हथकडी प्रभृतिसे किसी प्रकारका भय-संकोच नहीं था, बल्कि वे उससे अपना गौरव समझते थे। यथा समय हाकिमने विचारकर अन्तिम फैसला सुना दिया। विश्वनाथ बाबू निर्दोष समझे जाकर मुक्त किये गये। उनके बाहर आते ही जनताने गगन-भेदी नादसे वन्दे मातरम् का घोष किया। वहाँ सैकडोंकी संख्यामें भरतपुरवासी उपस्थित थे। वे लोग बडे सम्मानके साथ विश्वनाथ

को भरतपुर लाये। उनके मुक्त होनेका समाचार पाते ही ग्रामी-
णोंके हर्षकी सीमा न रही। उन सबने मिलकर बड़ा आनन्दो-
त्सव मनाया। उत्तरा पतिके सत्कार्यपर उन्हें बधाई देने लगी,
त्योंही यह समाचार गुमास्ताजीको ज्ञात हुआ, त्योंही उनकी
हरीभरी आशालता मुरझा गयी। आज कई दिनोंसे जिन-जिन
कार्योंके करनेका विचार हो रहा था, अब उन्हें उस प्रकार
करनेमें विघ्न दिखायी देने लगे। साथ ही आँखोंके सामने कई
भीषण विपत्तियोंसे सामना करनेकी सम्भावना नाचने लगी।
भरतपुरवालोंने उनके अत्याचार सम्बन्धी कई मुकदमे उनपर
दायर करने थे, गुमास्ताजी अब उनका स्मरण करके भी घबड़ा-
ने लगे और उन्हें इस प्रकारसे यहाँ रहना कल्याण-प्रद नहीं
मालूम होता था। जब हजारों रुपये व्ययकर देनेपर भी गुमास्ता
जी अपना अभीष्ट सिद्ध नहीं कर सके, तब तो वे विशेष
असफलताके साथ वहाँ रहने लगे। भरतपुरवालोंने उस भाग
[illegible] मिठाई गुमास्ताजीके यहाँ भी भेज दी थी। यों
तो मिठाई उन्होंने ग्रहण कर ली, किन्तु इससे उन्हें बड़ा
दुःख हुआ। यहाँ की प्रजाने पुनः एक बड़ी सभा संगठित की
जिसमें गुमास्ताजी तथा उनके सहायकोंकी कलुषित [illegible]
आलोचना की गयी। सभाका अन्तिम निर्णय इस प्रकार
शब्दोंमें व्यक्त कर दिया गया, कि "[illegible]
[illegible] अत्याचारोंसे न छूटेंगे, [illegible]
[illegible]", [illegible]

उनका रुपया जमाकर दिया करे, और प्रत्येक ग्राममें एक ऐसी सभा नियत की जावे, जिसके द्वारा ग्रामीणोंपर आये हुए दुःखको दूर करनेका यत्न होता रहे।” सभाका निर्णय सुनकर गुमास्ता-जी बड़े ही घबराये। उनकी आशाका स्वर्गमहल जलकर खाक हो गया। सब बनी-बनायी बात बिगड़ गयी।

भरतपुरके गुमास्ताजीका शुभ नाम था नटवर प्रसाद सिंह। वे ज़मीन्दारके अपने सम्बन्धियोंमें थे और यही कारण था, कि अपने मालिकके नामको सार्थक करनेके लिये वे मनमाना अत्याचार किया करते थे। पहले तो नहीं, पर उदयभानुकी मृत्युके बाद ही ने अपनी धर्मपत्नी प्रभावतीको भी यहीं लिवालाये थे और कचहरीके अहातेके भीतर ही अपने परिवारके साथ रहते थे। जबसे प्रभावती इनके साथ आकर रहने लगी, तभीसे वे श्रीवृद्धि करने लगे। इसीके कार्यके लिये हो उन्हें कभी-कभी जमीन्दारके तोड़ेमें हाथ लगाना पड़ता था, किन्तु तोभी शान्ति नहीं। प्रभा-वती बराबर गुमास्ताजीको खरी-खरी सुनाया करती नित नयी नयी चीजोंके लिये फर्माइशें करती। यदि बेचारे उसका कहना नमाननेका विचार करते, तो रातकी दुलत्तियां स्मरण आ जाती, जिससे किसी न किसी प्रकार उसकी अवहेला नहीं होने पाती। बराबरके तकाज़ोंसे तंग आकर उन्होंने प्रभावतीके इतने स्वर्णभूषण बनवाये थे, जितने संभवतः उनसे अधिक धनी मानीकी स्त्रियोंको भी नहीं मुअस्सिर होंगे और इसी कारण प्रजापर नित नया कर लगाया जाता था। कभी थोड़े

बहाने, कभी घंडीके बहाने और कभी सायकिलका नाम लेलेकरके ये चन्दा जमा किया करते और स्त्रीके गहने बनवाते थे। उन्होंने दीन प्रजापर अत्याचारका प्रचारकर उनका रक्त चूसचूसकर धन संग्रह किया था और जब कभी उससे पूरा न पडता था, तो मालिकके कोषमें भी हाथ लगाकर प्रभाकी आशा पूरी की जाती थी। भरतपुरके निकटवर्ती अन्य कई ग्रामोंपर भी बाबू अनर्थसिंह होका अधिकार था। वहांकी प्रजा भी भरतपुरवालोंका सभाओंमें सम्मिलित हो हो कर गुमास्ताजीकी अनीतिकी आलोचना करती थी। गुमास्ताजीके सुखसूर्यका अस्त होते ही अब दुःखरूपी रात्रिका प्रादुर्भाव हुआ। प्रजाको तंग करनेके लिये इन्होंने कितनेही फन्द-फरेब रचे, पर सबमें इन्होंने मुँहकी खायी। अतएव उसमें बराबर शिथिलता होने लगी। मामले मुकदमेके पीछे मालिकके कई सहस्र रुपये भस्मीभूत हो गये। अन्यायसे कर मिलनेका रास्ता बन्द हो गया। उलटे ही अपने सिर पडे कई मुकदमोंसे अभी गुमास्ताजी मुक्त नहीं हो पाये थे। बाबू अनर्थसिंहको गुमास्ता नटवर प्रसादकी सब बातें धीरे-धीरे मालूम हो गयीं। उन्होंने भी अपने कोषसे रुपया खर्च करनेकी आज्ञा न दी। साथ ही उनकी रोकड प्रभृतिकी जाँच करनेके लिये एक विश्वासपात्र व्यक्तिको भेजा। इस तरहसे ऊपरकी आमदनीका मार्ग बन्द हो गया, किन्तु खर्चका मार्ग पहले ही जैसा बना रहा, उस तरफ़ही किसीप्रकारकी रुकावट नहीं आने पायी। बल्कि

आजकल पहलेसे और भी अधिक फरमाइशें किया करती है और जहाँ उसमें जरा भी विलम्ब हुआ, कि गुमास्ताजीकी खोपड़ी खानेको तैयार होने लगती है। नटवरजी उसके रौद्र रूपको देख बहुत भयभीत हो जाते हैं। इसप्रकारसे भंझट में उलझ जानेसे नटवरजी उधार रुपये मँगवाकर कार्य करते थे। ज्योंही महाजनोंको पता लगा, कि—इनसे रुपये मिलनेकी आशा नहीं है, त्योंही उन्होंने तकाजे आरम्भ कर दिये और उससे भी कार्य नहीं चलते देख, नालिशें कर दी। रोकड़ चेक हो जानेपर नटवरजीके पास मालिकके कई हज़ार रुपये बाकी निकले। बस, अब क्या था? उधरसे भी वे क्रोधके भाजन हुए। रुपया नहीं देनेपर कामसे अलग कर दिये गये और रुपयेके लिये नालिश कर दी गयी। उधर भरतपुरकी प्रजापर अत्याचार वाले मुकदमोंमें भी इनको कुछ आर्थिक दण्डकी आज्ञा हुई। रुपयेके लिये चारों ओरसे एक साथ ही तकाजे होने लगे। उस सङ्कटावस्थामें वे प्रभाके निकट बहुत गिड़गिड़ाये, पर कुछ लाभ नहीं हुआ। उलटे वही इनपर बिगड़ी और कई अभावोंकी पूर्तिकी आवश्यकता बताने लगी। अन्तमें मनोरथ पूर्ण होनेकी सम्भावना न देख, वह अप्रसन्न हो, अपने पिताके घर चली गयी। रुपयेका कहींसे कुछ प्रबन्ध नहीं हो सका, यह देख नटवरजी बहुत घबड़ाये। अनेकोंके पैरों पड़े पर सब व्यर्थ! विचारालयसे सिर्फ दो सप्ताहका समय मिला था। उसके भीतर दण्डका रुपया नहीं चुकानेसे कठिन जेलकी

तना सहनी पड़ेगी। अब कहीं से कुछ नहीं मिला, तो अन्तमें फिर अपनी प्राणेश्वरी प्रभाके निकट प्रार्थना करनेके लिये वे उसके पिताके घर गये। वहाँ एकान्तमें उन्होंने प्रभावती से भेंट कर कहा—"प्यारी प्रभा, मैं बहुत सङ्कटमें पड़ा हूँ इस समय तुम्हारे सिवाय मेरी सहायता करनेवाला दूसरा कोई नहीं है।"

प्रभा—(झुँझलाकर) हटोजी, मेरे सामने नखरा करने आये हो? मैं स्त्री होकर तुम्हारी सहायता और रक्षा कैसे करूँ? मेरे पास रुपया आया कहाँसे? तुम पुरुष किसलिये हुए थे? इसप्रकार स्त्रीके निकट गिड़गिड़ानेमें लज्जा नहीं मालूम होती? छि! लोक-लाज सब पी गये?

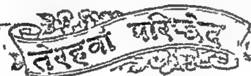
नटवर—यदि इस बार तुम मेरी रक्षा नहीं करोगी, तो स्मरण रहे, मैं जेलहीमें सड़कर मरजाऊँगा, वहाँसे रक्षाकी दूसरी कोई युक्ति ही नहीं दिखाती।

प्रभा—जाओ, हटो, मेरे सामनेसे। जहाँ जी चाहे, सड़कर मरो। मैं समझ चुकी कि आजके कईदिन पहलेसे ही ईश्वरने मुझे विधवा बना दिया मैं सुखपूर्वक वैधव्य यन्त्रणा सहूँगी।

नटवर प्रभाका नीरस उत्तर सुन पुनः गिड़गिड़ाकर बोले—मैं जानता हूँ कि तुम्हारे पास रुपये हैं, यदि तुम उन रुपयोंसे मेरी सहायता नहीं करना चाहती, तो मत करो, किन्तु मेरे ही बनाये ये अनेकों स्वर्णभूषण हैं इन्होंमेंसे दो एक देकर मुझे

आपत्तियोंसे छुड़ाओ, आपत्तियोंसे छूटनेपर मैं वह भी उपार्जन कर लाऊँगा।

भूषण देनेका नाम सुनतेही प्रभा सिंहिनीसी गर्जन करती हुई नटवरको डाटती हुई धक्का देकर बड़बड़ाती भीतर चली गयी।



जेठका महीना था। दिनका एक बजा था। सूर्यकी चमचमाती हुई किरणोंसे पृथ्वी उत्तप्त हो रही थी। सब जीवजन्तु कहीं न कहीं छायाके आश्रयमें उस ज्वलन्त ग्रीष्मको बिता रहे थे। बड़े बड़े लक्ष्मीपात्रोंके महलोंमें अनेक प्रकारके यत्नोंसे ठण्डकका प्रबन्ध किया गया था और वे लोग मध्याह्न समयमें सुखसे निद्रादेवीकी गोदमें सो रहे थे किन्तु ऐसे समयमें भी उत्तरा विश्राम नहीं लेती थी; कमरेके भीतर एक चारपाईपर उसका प्राणाधार मदन और दूसरीपर विश्वनाथ बाबू सोये थे और वह उन्हें पंखा झल रही थी। चारपाईसे कुछ आगे उसका प्यारा चरखा विश्राम कर रहा था, उसी समय इसके

दरवाजेपर किसीने क्षीणस्वरसे गृहस्वामीको पुकारा। उत्तराने उत्तरमें कहा—"कौन है? क्या चाहते हो?"

—उत्तराके उत्तरमें किसी चीजके गिरनेका शब्द सुनायी पड़ा। वह दौड़ती हुई दरवाजेकी ओर बढ़ी। देखती क्या है, कि एक द्वादश वर्षीय-दुर्बल भिक्षुक उसके दरवाजेपर गिर पड़ा है। उसको देखते ही उसने विश्वनाथ बाबूको उठाया और पता पानी लिये शीघ्रता पूर्वक आगे बढ़ी। गिरे हुए बालकके मुखमें पानी डालकर हवा करनेपर उसने आँखें खोलीं और कृतज्ञताभरी दृष्टिसे उसकी ओर देखने लगा। कुछ देरमें दम्पतिके यत्नसे उसको ज्ञान हुआ। उसने बड़ी नम्रतासे कुछ भोजन माँगा। उत्तराने प्रेमपूर्वक उसको भोजन कराया, भोजन कर लेनेके कुछ समय बाद उसके मुँहसे-पुष्ट शब्द निकलने लगे। उत्तराने कई दिनों तक उसको सुस्वादु भोजन देकर रक्खा और एक दिन उसका नाम-धाम पूछकर कहा,—"यदि तुम्हारी इच्छा हो तो यहाँ रह सकते हो, अन्यथा जैसी इच्छा हो करो।"—उत्तराकी बातोंको सुनकर वह बहुत सन्तुष्ट होकर बोला—"माता! यदि रुष्ट न हो, तो मुझे अपनी सेवामें रक्खो। आप जो आज्ञा करेंगी, मैं उसे सहर्ष पालन करूंगा।"

उसी दिनसे वह उत्तराके यहाँ रहने लगा और उसके यहाँके काम प्रसन्नता पूर्वक करने लगा। वह समय समयपर काते हुए सूतको बाजारमें लेजाकर बेच लाया करता था और घरके पासही लगी हुई बाड़ीमें परिश्रम पूर्वक कन्द-मूल लगाया करता

था। थोड़े ही दिनोंमें विश्वनाथ और उत्तराको उसने अपने कार्यों से ऐसा प्रसन्न किया, कि वे लोग इसको अपने घरके लड़केकी भाँति प्यार करने लगे। उन्होने उसका नाम "चेतनदास" रखा। मदनको उससे बड़ा प्रेम हो गया। दोनो एक दूसरेके साथ पढ़ने लिखने, खेलने कूदनेमें मन लगाने लगे। चेतनदासकी सहनशीलता और बुद्धिचातुर्यसे दम्पतिको बड़ा आनन्द होने लगा।

विश्वनाथ बाबूके उद्योगसे भरतपुरमें भी एक अच्छी पाठशाला खोली गयी, जिसमें दो सुयोग्य अध्यापक नियुक्त किये गये। उनके कार्यों की देख भालका भार विश्वनाथ बाबू पर ही रहा। अध्यापकोंके भोजनादिका प्रबन्ध मुखिया द्वारा ठीक कर दिया गया। मदन और चेतनदास भी वहीं पढ़ने लगे। धीरे धीरे भरतपुरकी काया पलट गयी। पहले वहावालों-की शिक्षाका विशेष रूपसे कोई प्रबन्ध नही था, सिर्फ एक छोटीसी पाठशाला थी, जो नहींके बराबर थी। अब वह एक अच्छे विद्यालयके रूपमें हो गयो और धीरे-धीरे माध्यमिक अंग्रेजी शिक्षातकका प्रबन्ध होगया।

विश्वनाथ बाबूका अधिक समय सभा समाजोंके कार्यों में बीतता था। उसीमें उनको आनन्द भी मिलता था। प्रारम्भिक कार्यकालमें तो उनको झूठे झूठे मुकदमोंके झमेलोंने ऐसा छिपाया, कि और किसीको उनका दर्शन भी दुर्लभ हो जाता था। अविराम कष्टसे विपक्षियोंका सामना करने पर

विजय भी उन्हीके हाथ लगी। अत्याचारियोंके अत्याचारोंके जनाजे निकल गये। गुमाश्ताजी बडे घरमें कोल्हूपर चले गये। भरतपुरसे हाहाकारकी विदाई हुई और शांतिकी स्थायी स्थापना हो गयी। विश्वनाथ (बाबू) का नाम आगमें तपाये हुए "खरे सोने"की भाँति सर्वत्र चमकने लगा। गुमाश्ता नटवर प्रसादके जेल जातेही जमीन्दारके अमले भी बिल्कुल सीधे हो गये। हर प्रकारसे भरतपुरमे शान्ति स्थापित हुई। वहाँके रहनेवाले सुख चैनसे रहने लगे सही, किन्तु बाबू विश्वनाथ प्रसाद जीको चैन नही था। धीरे-धीरे उनकी प्रकृति देश कार्यो की ओर होती ही गयी। आप बड़ी-बडी राष्ट्रीय सभाओंमे आने-जाने लगे और वहाँ भी लोगोंसे उनका परिचय होने लगा। थोडे ही दिनोंमें लोगोंको उनकी स्वार्थ रहित देश सेवाका परिचय मिल गया। फिर क्या था। उनकी गिनती नेताओंकी श्रेणीमें होने लगी। वे यथार्थमें सच्चे नेताकी भाँति कार्यकुशल निकले। संन्यासी निरञ्जनदाससे प्राय इनकी भेंट हुआ करती थी, किन्तु एक दूसरेको पहचानते नहीं थे। संयोगवश एकदिन संयुक्त प्रान्तकी प्रान्तीय राष्ट्र सभासे निरञ्जन जी लौटे आरहे थे, उनके साथही विश्वनाथ बाबू उनसे कुछ राजनैतिक चर्चा करते आरहे थे, कि संन्यासीजीने बातचीतमें उनसे उनका शुभ नाम और निवासस्थान पूछा। नामके साथ ज्योंही विश्वनाथ बाबूने अपने निवासस्थानका नाम बताया, त्योंही संन्यासीजीने आश्चर्य भरी दृष्टिसे उनकी ओर कुछ देर

देखकर उन्हें अपने गलेसे लगाकर कहा—"भाई विश्वनाथ! मैं तुम्हारा परिचय पाकर बहुत प्रसन्न हुआ। कहो, मेरा मित्र उदयभानु और उसका प्रिय पुत्र मदन कहाँ और कैसे हैं?"

संन्यासीके मुखसे इतनी बात सुनते ही विश्वनाथ बड़े ध्यानपूर्वक संन्यासीके मुखकी ओर देख, सहसा उनके पैरोंसे लिपटकर रोते हुए बोले—"पूज्य प्यारे बाबू! आपके दर्शनसे यह अभागा कृतार्थ हुआ। आज मुझे यथार्थमें वैसाही आनन्द होता है, मानो मेरे अग्रज स्वर्गसे आकर मुझको दर्शन देने आये हैं।"

उस मिलनका दृश्य ही अपूर्व था। उदयभानुके स्वर्गीय होनेकी बात सुनते ही संन्यासी निरञ्जनदास पृथ्वीपर गिर पड़े। बहुत आग्रह-अनुरोध करके विश्वनाथ संन्यासीजीको भरतपुर लाये। निरञ्जनदास मदनको देख बहुत प्रसन्न हुए। उसीदिन चेतनदासका परिचय भी सन्यासीजीने पूछा, जिससे विश्वनाथ बाबूको पता मिल गया, कि यह मदनका ममेरा भाई, गायत्रीका भ्रातृपुत्र है,—उसका परिचय पाकर और विश्वनाथको अत्यन्त हर्ष हुआ, साथही उसकी विपत्तियोंसे दुःख भी कम नहीं हुआ।

मदन और चेतनदासके योग्य होनेतक कभी-कभी [illegible] बाबू उनकी देखभालमें घर आजाया करते। लेकिन वह दोनो भाई चतुर हुए और उचराको भी एक पुत्ररत्न चुका, तब उनको घरकी चिन्ता बिल्कुल छूटसी गयी और

वे सुखपूर्वक सन्यासी निरञ्जनदासके साथ रहकर अपना शेष जीवन देश-कार्यमें व्यतीत करते रहे।

उत्तराके सुप्रयत्नसे उसके घरकी अवस्थामें भी बहुत परिवर्तन हुआ, वह भी लड़कोंकी देखभाल करनेके बाद उनके कार्योंसे प्रफुल्लित रहती हुई जीवन-यापन करने लगी। जब कभी अवकाश मिलता, किसी न किसी उत्तम पुस्तकके अवलोकन करनेमें ही उत्तरा अपना समय बिताती थी। ललिता बाबू यथासमय अवकाश पानेपर 'उत्तरा'को देखने आ जाया करते थे।

रूपवतीको बहुत दिनोंसे पुत्रीसे भेंट नहीं हुई थी, जिससे वह बहुत घबड़ा रही थी। यद्यपि उत्तराको इच्छा भी माताके दर्शनकी कुछ कम नहीं थी, किन्तु झञ्झटोंसे अवकाश न मिलनेसे वह मायके नहीं जासकती थी। ललिता बाबूने कईबार उसे थोड़े समयके लिये भी पटने चलनेको कहा था, पर इसके उत्तरमें उत्तराने निवेदन किया था कि मैं अवश्य माता जीके दर्शनार्थ जाऊँगी, जरा अवकाश मिल जानेकी देर है। उत्तराने जबसे विश्वनाथ बाबूके घरमें पैर रक्खा था, यथार्थमें तबसे बेचारीको नाममात्रका भी अवकाश नहीं मिला; नित्य नई नई आफतोंसे सामना करना पड़ा, विपत्ति-विद्यालयमें अनेक कठिन कठिन परीक्षायें देनी पड़ीं, किन्तु सब परीक्षाओंमें उसने सफलता पायी, उन सब बखेड़ोंके दूर होनेपर उत्तराने पिताके पास पत्र लिखकर सूचित कर दिया

कि मैं अमुक तिथिको श्रीचरणोंके दर्शनार्थ आऊंगी। यथा समय ललिताबाबूको पुत्रीका पत्र मिला, पत्र पढ़ते ही उनका मुख कमल खिल गया। नियत समय से कुछ पहले ही आज उन्होंने अपने कार्यालयसे घरका मार्ग लिया। रूपवती उत्तरासे मिलनेके लिये व्याकुल हो रही थी। यद्यपि दोनोंसे पत्र व्यवहार जारी था, किन्तु उससे दोनोंमेंसे किसीको सन्तोष नहीं होता था और जबसे रूपवतीने पुत्रीका कष्ट समाचार सुना था, तभी से वह बहुत अधीर रहा करती थी उस दिन पतिके ओफिस जानेके बाद ही वह अपने कमरेमें बैठी कुछ देर उत्तराही-के विषयमें चिन्ता करनेके बाद उसीको पत्र लिख रही थी, कि इधरसे ललिताबाबूने उस कमरेमें प्रवेश किया, असमयमें पतिको कार्यालयसे आया देख बोला –"आज इतने पहले क्यों आ गये ?"

ललिता० –"यों ही चला आया, इन दिनों कार्यालयमें उतना कार्य भी नहीं है, बैठे-बैठे कुर्सी तोड़ना उचित नहीं समझा और कुछ सिरमें भी दर्द था।

रूपवती –ऐ सिरमें दर्द। कहिये तो, अब कैसा है ?

ललिता०—किसी प्रकारकी चिन्ता न करो, घबड़ानेकी बात नहीं है। बहुत साधारण दर्द और वह भी कम हो रहा है।

रूपवती—समय खराब है, इसीसे डरती हूँ।

ललिता०—नहीं, किसी प्रकारका डर मत करो। कहो अभी तुम क्या लिख रही थी ?

रूपवती—और क्या लिखूँगी ? इधर कई दिनोंसे उत्तराका

कोई पत्र नहीं आया, इसीसे चित्त बड़ा चिन्तित रहता है। उसीको पत्र लिख रही थी। अच्छा हो, यदि आप उसको एकबार देख आयें। इसबार जिस प्रकार हो, उसको अवश्य लिवा लानेका यत्न करेंगे। बच्ची जीवनभर दुःख ही उठाती रही। आप दूसरोंको तो नौकरी दिलाते हैं; किन्तु अपने दामादके लिये कुछ नहीं करते। अगर उसको कोई अच्छी जगह मिल जाती, तो वह राह राहकी धूल क्यों फाँकता ? सुनती हूँ, कि उत्तरा भी चरखा चलाती-चलाती आधी हो गयी है। क्या आपको इसकी कुछ चिन्ता नहीं है ?"

ललिता—तुम व्यर्थ ही घबराती और मुझे कोसती हो। ईश्वर उत्तरा जैसी कन्या सब किसीको दे। यदि वह चरखा कातकर ही घर-खर्च चलाती है, तो तुमसे हरप्रकार भली है। उसे कभी किसी महाजन-दूकानदारकी लाल-पीली आँखे तो नहीं देखनी पड़ती ? यदि मैं सैकड़ों रुपये मासिक प्राप्त करता हूँ, तो किस कामका ? महीना अन्त होते न होते तकाज़ोंके ताँते लगजाते हैं। जब कभी वेतन मिलनेमें दो-चार दिनका विलम्ब हो जाता है, तब चूल्हा ही नहीं जलता। वह हर प्रकारसे भली-चङ्गी है, साधारण भोजन-वस्त्रोंके साथ सानन्द जीवन-व्यतीत करती हुई देशका बहुत कुछ कार्य कर रही है। विश्वनाथकी नौकरीके विषयमें मुझे दोष देना व्यर्थ है। मैंने एक बार उससे इस विषयमें कहा था, किन्तु मैं उसकी इस ओर अभिरुचि नहीं देखता। यह भी जो

कुछ करता है, अच्छा ही है। इस नश्वर शरीरसे जहाँतक हो सके, दूसरोंका उपकार करना ही चाहिये।

रूपवती,—मैं भी इतना समझती हूँ, किन्तु अपने प्राणोंकी रक्षा करके ही सब कुछ करना होता है। साथ ही लड़केवालेके लिये भी कुछ अवश्य सञ्चय करना चाहिये। यदि उसके पिता उसके लिये कुछ भी स्थायी सम्पत्ति छोड़ जाते, तो आज उसको इतना कष्ट नहीं उठाना पड़ता और मेरी उत्तरा भी इन भीषण विपत्तियोंमें पड़कर नहीं झुलसती। खैर, इसकी चिन्ता पीछे की जायगी, किन्तु अभी उसके लानेके विषयमें क्या कहते हो?

ललिताप्रसादने अपनी धर्मपत्नी रूपवतीके प्रश्नके उत्तरमें उत्तराका पत्र हाथमें देकर कहा,—"यह पत्र आजही आया है, आजके आठवें दिन उत्तरा स्वयं आजायेगी, पढ़लो।"

"आजके आठवें दिन उत्तरा स्वयं आजायेगी", इस वाक्यसे रूपवतीको अपार आनन्द हुआ। उसने जल्दी-जल्दी पत्रको पढ़ना आरम्भ कर दिया।



चौदहवाँ परिच्छेद


गतपुरके निकट ही बाबू महावीरप्रसादकी काटन-मिल स्थापित थी और उत्तरोत्तर उन्नतिके मार्गमें अग्रसर हो रही थी। दसही पन्द्रह वर्षों के अरसेमें महावीर बाबू करोड़पति कहे जाने लगे। इनके कार्यालयसे भारतके बाहर भी अच्छी तादादमें माल बाहर भेजा जाता था। जगतपुरसे लगे हुए उत्तरकी ओर बड़े लम्बे-चौड़े मैदानमें उनके कार्यालयका भव्य भवन सुशोभित हो रहा था। कार्यालयसे लगा हुआ ही उनका दोमञ्जिला निवास-गृह था। प्रेमाके साथ वे वहीं रहा करते थे। प्रेमा जब तब जगत्पुर अपने पिताके घर आया करती थी। कभी-कभी तो उसकी माता भी स्वयं प्रेमाके घर जाया करती थी। प्रेमाकी माताको 'हेमा' नामकी एक और छोटी लड़की थी। इन दोनों बहनोंके अतिरिक्त उसको कोई तीसरी सन्तान नहीं थी। प्रेमाके पिता भी महावीर-काटन-मिलमें ही एक प्रधान कर्मचारीके पदपर नियुक्त थे। हेमाका विवाह महावीर बाबूके छोटे भाई बाबू रघुवीरप्रसादजीसे हुआ था। रघुवीर बाबू भागलपुरमें वकालत करते थे। यद्यपि उनकी वकालत उतनी नहीं चली थी, तोभी अपने घरके खर्चके

लिये किसीके आगे गिड़गिड़ाना नहीं पड़ता था। हेमा भी पतिके साथ ही भागलपुरमें रहा करती थी। जब-कभी हेमा के साथ बाबू रघुवीरप्रसाद, भाई और भाभीसे मिलने जगतपुर जाया करते थे, किन्तु वहाँ इन लोगोंके साथ महावीर बाबूका व्यवहार उतना अच्छा नहीं होता था। प्रेमा भी हेमासे हृदय खोलकर नहीं मिलती थी। न मालूम, इस प्रकारके व्यवहारसे वह क्या भला सोचती थी। मैं कुछ और ही समझता हूँ। वह यह, कि महावीर बाबूने अपने उद्योग और परिश्रमसे करोड़ोंकी सम्पत्ति अर्जित की थी। स्वार्थ उनको सिखा रहा था, कि देखना, अपने अनुजके साथ प्रेम पूर्वक बर्ताव नहीं करना, अन्यथा आधी सम्पत्तिसे हाथ धो बैठोगे। मेरा जहातक अनुमान है, प्रेमा भी इसी कारण अपनी छोटी बहिन हेमासे सद्भाव नहीं रखती। हेमा, बहिन-बहनोई, या यों कहिये, कि जेठ-जेठानीका व्यवहार अच्छा न देख ताड़ गयी, कि इनलोगोंके यहाँ आना अच्छा नहीं है और इसी विचारसे उसने अपने पति रघुवीर बाबूसे भी यह बात कह दी, कि हमलोगोंका अब यहाँ आना अच्छा नहीं; क्योंकि हमलोगोंके यहाँ आनेहीसे आपके भाईकी मुख मुद्रा भयंकर हो जाती है। मेरी प्रेमा दीदी तो मुझसे प्रेम पूर्वक बोलती भी नहीं। न मालूम क्यों, उसके सिरपर मैं बोझसी प्रतीत होती हूँ। रघुवीर बाबूने, हेमाके कहनेपर उतना ध्यान नहीं दिया था और न अभीतक उन्होंने भाई और भाभीके व्यवहारपर ही उतना ध्यान दिया था, लेकिन हेमाके कहने-

पर वे इसकी जाचकी फिक्रमें अवश्य थे। अब हेमाका प्रेमाके यहाँ आना तो विल्कुल वन्द ही होगया, किन्तु रघुवीर वावूका आना-जाना अभी जारी था और वह भी इसी मतलबसे, कि देखें, हेमाका कहना कहाँतक ठीक है। किन्तु इसके लिये वकील साहवको अधिक समयतक नहीं भटकना पड़ा, शीघ्र ही पता लग गया, कि हेमाका कहना कहाँतक सत्य है। एकवार वड़े दिनकी छुट्टियोंमें हेमाको भागलपुरहीमें छोड़, वे भाईसे मिलनेके लिये जगतपुर आये। यहाँ इसवार भाईका व्यवहार इनके साथ जैसा हुआ, उसको वे भूले नहीं और उसीसे पता लग गया, कि हेमाका कहना कहाँतक ठीक है। रघुवीर वावू ठीक दशही वजे दिनको महावीर वावूके यहाँ आये। वहाँ आने पर न तो उनकी भाई ओर भाभीने भेट हुई और न किसीने भोजनहीको पूछा। महावीर वावूने नौकरके द्वारा कहला भेजा, कि मुझको अभी किसीसे मिलने और वाते करनेका समय नहीं है। उसको कह दो, कि इस प्रकार मुझे तंग करनेकी चेष्टा न करे। नौकरने आकर रघुवीर वावूसे ठीक उसी प्रकार सव वाते कह दी। रघुवीर वावू भाईसे सम्मानित होते हुए सीधे भागलपुर लौट गये। अनुजके लौट जानेकी वात सुनकर महावीर वावू प्रसन्न हुए। उन्होंने समझा, कि सिरकी बला टली। ज्योंही प्रेमाको यह शुभ समाचार मिला, त्योंही वह स्वामीके सत्कार्यपर उन्हें वधाई देने आयी। उनके आते ही महावीर वावूने कहा,—"आजकी वाते तुमको ज्ञात हुई ?"

प्रेमा—यही न कि आपने अपने अनुजको अपमानित कर घरसे निकाल दिया ?

महावीर—नही, यों कहो कि सिरकी बला टाली।

प्रेमा—खैर, यही सही, अच्छा किया। यदि उसे कुछ भी आत्म-गौरव होगा, तो यहाँ फिर कभी न आवेगा।

महावीर—लेकिन यह कार्य अच्छा नही हुआ। न मालूम, उसके मनमें कितना दुःख हुआ होगा। फिर तुम्हारी बहिन सुनकर न मालूम क्या कहेगी ?

प्रेमा—आप व्यर्थ ही चिन्ता करते हैं। यदि उन लोगोंके मनमें आपके व्यवहारसे कुछ दुःख हुआ हो, तो होने दो, अच्छा ही है। आपहीकी कृपासे वे आज मनुष्य हुए हैं। पढा लिखा-कर आदमी कर दिया, अब क्या चाहिये ? यदि उन्हें प्रसन्न रखना चाहते हैं, तो मिलमें उनको आधा हिस्सा दे दीजिये। लेकिन याद रहे, यह कलियुग है। यहाँ किसीका कितना उप-कार क्यों न किया जाये, लेकिन लोग कभी कृतज्ञ नहीं होते।

महावीर—तुम्हारी बातोंहीपर विश्वास करके मैंने उसे फटकारा है, अब तो वह पुनः लौटकर यहाँ नही आयेगा।

प्रेमाके साथ महावीर बाबू अन्तःपुरमें इसी प्रकार बातें कर रहे थे, कि धायने आकर सूचना दी, कि मिलका जमादार बाहर खड़ा है। आपसे कुछ कहने आया है।

महावीर बाबू मिलके जमादारका नाम सुनते ही बाहर आये। जमादारने बडे ही आदरसे अभिवादन कर निवेदन



किया,—"मैनेजर साहवने यह सूचना देनेकी आज्ञा दी है, कि आज मिलमें हडताल हो गयी। कोई मजदूर अपने कार्यपर नही ठहरा। सिर्फ आया और प्रार्थनापत्र देकर चला गया।"

मिलमें हडताल होनेकी वात सुनते ही वाबू साहव वेतरह घबराये। शीघ्रता-पूर्वक कपडा पहन, मोटरसाइकिलपर सवार होकर मिलकी ओर चले। मिलके वाहर मैदानमें कार्य करनेवाले कुली-मजदूरोंकी सभा बैठी हुई थी। वे लोग आपसमें विचार कर रहे थे। उनमेंसे एक अपने मन्तव्यको खूब उच्चस्वरसे अपने साथियोंको सुना रहा था। उनलोगोंने आपसमें विचार कर तय करलिया, कि यदि इस विकराल दुष्कालमें भी हमलोगोंकी मजदूरी नहीं वढायी जायेगी, तो हमलोग कभी कार्यपर नही जायेंगे। साथ ही मिलके मैनेजर यदि इसी-प्रकार हमलोगोंपर कोडेबाजी करते रहेंगे, तोभी हमलोगोंकी हडताल जारी रहेगी। जिस समय उन मजदूरोंकी सभामें ये प्रस्ताव पास हो रहे थे, उसी समय उनके वगलसे महावीर वाबू मिलकी ओर जाते देख पडे। उनको आते देख, मजदूरोंमें काना-फूसी होने लगी। किसीने कहा,—"मालिक आरहे हैं; न मालूम किसपर अप्रसन्न होंगे।" किसीने कहा,—"अप्रसन्न होकर ही मेरा कौनसा अनिष्ट करेंगे? यदि आधा पेट भोजन देकर कोई किसीसे कार्य लेता रहे, तो ऐसा कितने दिन चलेगा? ऐसे नराधमको प्रसन्न रखनेसे लाभ ही क्या?" कोई कहता,—"मालिकके आगे निवेदन करनेमें क्षति क्या है? चलो,

सब कोई उनसे जाकर अपनी बाते कहें।" आपसमें इस प्रकार बातें होते देख, उनके सरदारने कहा—"अभीसे आपलोग ऐसा करनेकी इच्छा क्यों करते हैं? जरा सब्र करें, सब कार्य ठीक-ठिकानेहीसे होगे। मालिक मिलकी ओर जारहे हैं, अच्छी बात है। वहा मैनेजर साहब उनको हमलोगोंकी मांग सुनाही देंगे। देखिये, उसपर ये क्या आज्ञा देते हैं? जब मजदूरी करके ही भोजन पाना है, तो फिर घबरानेकी क्या आवश्यकता? एक नही, अनेक स्थानोंमें मजदूरीके दरवाजे खुले है। जरा शान्तिपूर्वक धीरतासे काम लीजिये।"

सरदारका व्याख्यान सुनते ही मजदूरोंमें शान्ति हो गयी, वे लोग चुपचाप बैठकर सरदारकी आज्ञाकी प्रतीक्षा करने लगे।

बाबू महावीरप्रसादने मिलमे जाकर देखा, कि एक मजदूर भी कार्य करने नही आया। मिलके बडे-बडे कर्मचारी, क्लार्क प्रभृति अपने कार्य पर आरूढ थे। पर मशीनें सबकी सब बन्द पडी थीं। मालिकको आया देख, मैनेजरने सब बातें उनसे कहीं। महावीर बाबूने मैनेजरसे कहा,—"पहले इसका पता लगाना आवश्यक है, कि इनका अगुआ कौन है?"

मैनेजर—मैं सब पता लगा चुका हूं, हमारे अनुभवसे तो कार्यालयके दो-तीन क्लार्क ही उनको भडकानेवाले हैं।

महावीर—उन क्लार्कोंके नाम आप नोट करले और अभी तो उनसे कुछ न कहें, पर पीछे उन्हें अपने कियेका

प्रतिफल देनेमें किसी प्रकारकी कोर-कसर नहीं रखेंगे, अभी तो किसी युक्तिसे इन मजदूरोंको शीघ्र राजी कर कामपर लानेका यत्न करना चाहिये।

मैनेजर—मैंने भी ऐसाही विचारा था, सिर्फ आपसे आज्ञा लेनेकी देर थी।

महावीर—मजदूरोंको राजी करनेका आपने क्या उपाय सोचा है?

मैनेजर—उनकी माग किसी अंशमें पूरी कर देनेहीसे वे लोग कार्यारम्भ कर देंगे।

महावीर—अच्छा हो, यदि किसी प्रकारका प्रलोभन दे, उन मजदूर सरदारोंको मिलाया जाये जिनके कहने मुताबिक मजदूर लोग चलते हैं, क्योंकि इनकी चाल तो भेड़ियोंसे मिलती है जिधर ही प्रधान जायेगा, ये लोग भी उधर ही आँख बन्द किये दौड़ पड़ेंगे।

मैनेजर—आपका कहना ठीक है, लेकिन उनके सरदारोंको प्रलोभन देकर अपनी ओर मिलाना टेढी खीर है। वे लोग अन-पढ, जाहिल, हठी हैं। जिस बातके लिये हठ करेंगे, उसको पूरा करके ही छोड़ेंगे।

महावीरप्रसाद—आप भूलते हैं, मैनेजर साहब! रुपया सब करा सकता है। उसमें वह मोहनी शक्ति है, कि जिसको चाहे उसीको अपने कब्जेमें कर ले।

मैनेजर—आपका कहना बिल्कुल ठीक है, लेकिन—



महा०—लेकिन क्या ? आप इनके सरदारोंको बतायें, मैं ही उन्हें बुलवाता हूँ।

मैनेजर—मैंने उन सरदारोंको बुला भेजा था। किन्तु वे लोग बिना सब मजदूरोंके कार्यालयमें आना नहीं चाहते। मैंने कईबार उनको कहलाया, किन्तु वे राजी नहीं होते।

महावीर—आप उनके नाम अलग लिख लें और चलें, मैं उन्हें यही एक-एक कर बुलाऊँगा।

मैनेजर साहबने एक अलग कागजपर कोई दश-पन्द्रह मजदूरोंके नाम लिखकर महावीर बाबूके हाथमें कागज दे दिया। महावीर बाबू, मैनेजरके साथ कार्यालयसे बाहर, जहाँ मजदूरोंकी जमायत जमा थी, उनसे कुछ दूर अलग कुर्सी मँगवाकर बैठे और एक-एक करके कागजपर लिखे हुए मजदूरोंके नामको पुकार-पुकारकर बुलाना आरम्भ किया। आनेके पहले वे लोग आपसमें न मालूम क्या विचार करते रहे, पीछे आना आरम्भ किया। महावीर बाबूने उन मजदूरोंसे एक-एक कर कई प्रश्न पूछे, जिनका उत्तर सबने एकही दिया, जिससे उनको उन मजदूरोंकी दृढताका पता लग गया। पहले तो उन्होंने उनसे कहा, कि तुमलोग काम करना बन्द न करो, तुम्हारी प्रार्थनापर विचार किया जायेगा, किन्तु किसीने इसको स्वीकार नहीं किया। उन्होंने मजदूरोंके सरदारोंको कुछ लोभ भी दिया, लेकिन वे नहीं हटे। जब उन्होंने किसी प्रकारसे कार्य्य होनेकी सम्भावना न देखी, तो

कुछ धमकी भी देने लगे, किन्तु वे सबके सब अपनी प्रतिज्ञापर ऐसे अड़े थे, कि महावीर बाबूके साम, दाम, दण्ड और भेद, सब निष्फल हो गये। जब किसी तरह कार्य नहीं निकला, तो सिर्फ चार दिनके लिये मिल बन्द कर देनेकी आज्ञा देकर वे घर लौट आये। प्रेमा मिलकी हड़तालसे बड़ी घबरायी हुई थी, उसको इसी बातकी चिन्ता थी, कि कहीं क्रोधमें आकर मजदूर लोग लूटपाट करना न आरम्भ कर दें। पीछे उनको सभालना कठिन हो जायेगा। महावीर बाबूने प्रेमासे मिलकी सब बाते कहकर सम्मति पूछी, कि क्या करना चाहिये? उत्तरमें प्रेमाने कहा—"पहले मजदूरोंकी माँग पूरी करके उनको कार्यपर ले आना चाहिये। पीछे उनके भड़कानेवालोंका पता लगाकर उनको पुरस्कार देनेका यत्न होना चाहिये।"

महावीर बाबू स्त्रीकी बातको वेदवाक्य समझते थे। इसीलिये दूसरे ही दिन मजदूरोंकी माग अनेक अंशोंमें पूरी कर उन्होंने उन्हें कार्य करनेकी आज्ञा देदी। मजदूरोंने कार्य करना आरम्भ कर दिया। मिलमें एक प्रकारसे शांति हो गयी। अब मिलके मैनेजर साहब उन मजदूरों और दलालों को निकालनेकी फिक्रमें लगे, जिनके बहकानेसे मजदूरोंने हड़ताल की थी। हड़ताल मिटनेके दो‌दो महीने बाद रामभरोसे नामक क्लार्क को नौकरी छोड़ देनेकी आज्ञा दी गयी। मैनेजर साहबकी दृष्टिमें वही अधिक अपराधी ठहरा। रामभरोसेने मैनेजरसे अपराध बतानेकी प्रार्थना की, कि



महा०—लेकिन क्या ? आप इनके सरदारोंको बतायें, मैं ही उन्हें बुलवाता हूँ ।

मैनेजर—मैंने उन सरदारोंको बुला भेजा था। किन्तु वे लोग विना सब मजदूरोंके कार्यालयमें आना नहीं चाहते। मैंने कईबार उनको कहलाया ; किन्तु वे राजी नहीं होते ।

महावीर—आप उनके नाम अलग लिख लें और चलें, मैं उन्हें वहीं एक-एक कर बुलाऊँगा ।

मैनेजर साहबने एक अलग कागजपर कोई दश-पन्द्रह मजदूरोंके नाम लिखकर महावीर बाबूके हाथमें कागज दे दिया। महावीर बाबू, मैनेजरके साथ कार्यालयसे बाहर, जहाँ मजदूरोंकी जमायत जमा थी, उनसे कुछ दूर अलग कुर्सी मँगवाकर बैठे और एक-एक करके कागजपर लिखे हुए मजदूरोंके नामको पुकार-पुकारकर बुलाना आरम्भ किया। आनेके पहले वे लोग आपसमें न मालूम क्या विचार करते रहे, पीछे आना आरम्भ किया। महावीर बाबूने उन मजदूरोंसे एक-एक कर कई प्रश्न पूछे, जिनका उत्तर सबने एकही दिया, जिससे उनको उन मजदूरोंकी दृढ़ताका पता लग गया। पहले तो उन्होंने उनसे कहा, कि तुमलोग काम करना बन्द न करो, तुम्हारी प्रार्थनापर विचार किया जायेगा, किन्तु किसीने इसको स्वीकार नहीं किया। उन्होंने मजदूरोंके सरदारोंको कुछ लोभ भी दिया, लेकिन वे नहीं हटे। जब उन्होंने किसी प्रकारसे कार्य्य होनेकी संभावना न देखी, तो

कुछ धमकी भी देने लगे, किन्तु वे सबके सब अपनी प्रतिज्ञापर ऐसे अड़े थे, कि महावीर बाबूके साम, दाम, दण्ड और भेद, सब निष्फल हो गये। जब किसी तरह कार्य नहीं निकला, तो सिर्फ चार दिनके लिये मिल बन्द कर देनेकी आज्ञा देकर वे घर लौट आये। प्रेमा मिलकी हड़तालसे बड़ी घबरायी हुई थी, उसको इसी बातकी चिन्ता थी, कि कहीं क्रोधमें आकर मजदूर लोग लूटपाट करना न आरम्भ कर दें। पीछे उनको सभालना कठिन हो जायेगा। महावीर बाबूने प्रेमासे मिलकी सब बातें कहकर सम्मति पूछी, कि क्या करना चाहिये? उत्तरमें प्रेमाने कहा—"पहले मजदूरोंकी माँग पूरी करके उनको कार्यपर ले आना चाहिये। पीछे उनके भड़कानेवालोंका पता लगाकर उनको पुरस्कार देनेका यत्न होना चाहिये।"

महावीर बाबू स्त्रीकी बातको वेदवाक्य समझते थे। इसीलिये दूसरे ही दिन मजदूरोंकी माग अनेक अशोंमें पूरी कर उन्होंने उन्हे कार्य करनेकी आज्ञा देदी। मजदूरोंने कार्य करना आरम्भ कर दिया। मिलमें एक प्रकारसे शाति हो गयी। अब मिलके मैनेजर साहब उन मजदूरों और क्लार्कों को निकालनेकी फिक्रमें लगे, जिनके बहकानेसे मजदूरोंने हड़ताल की थी। हड़ताल मिटनेके दोही महीने बाद रामभरोसे नामक क्लार्क को नौकरी छोड़ देनेकी आज्ञा दी गयी। मैनेजर साहबकी दृष्टिमें वही अधिक अपराधी ठहरा। रामभरोसेने मैनेजरसे अपराध बतानेकी प्रार्थना की, कि

किस कारण मैं हटाया जारहा हूँ ? किन्तु मैनेजरने सिर्फ इतना ही कहा, कि अब तुम्हारी आवश्यकता नहीं है। रामभरोसेने महावीरबाबूतक इसकी अपील की; किन्तु वह भी निष्फल हुई। अन्तमें वह निराश हो घर बैठ रहा। नौकरी छूटनेके साथ ही उसको कोई दूसरी जगह नहीं मिली, इस हेतु बेकार ही बैठनेसे जीमें अनेक प्रकारकी बेचैनी बनी रहने लगी। बेचारेके घरकी अवस्था भी उतनी अच्छी नहीं थी, कि कुछ दिन घर बैठे रहनेसे भी घर-खर्च चलसके। उसका चित्त चञ्चल और चिन्ता-ग्रस्त देख, उसकी धर्मपत्नी उसको कहा करती, —"आप नौकरी छूट जानेसे इस प्रकार चिन्तित क्यों हो गये हैं ? ज़रा यत्न कीजिये, इधर-उधर दौड़-धूप कीजिये, बहुत जगहें मिल जायेंगी।"

"नहीं, मैं चिन्ता तो नहीं करता और यत्नमें भी हूँ" कहकर रामभरोसे चुप हो जाता था। उधर मिलके मैनेजर साहबने एक-एक करके पांच मजदूरों और दो क्लार्कों को फिर हटा दिया। वे लोग आपसमें मिलकर परामर्श करने लगे और पुनः ऐसी युक्तिके यत्नमें लगे, कि फिर किसी प्रकार हड़ताल न हो। वे लोग रातमें मिलके मजदूरोंसे मिलकर उनसे कहने लगे, कि बिना अपराधके हम लोगोंकी जीविकाका खून मैनेजरने किया है। हमने अपने स्वार्थके लिये उस बार हड़ताल नहीं करायी थी। हड़तालका अगुआ होनेके अपराधमें इतने दिनों बाद एक-एक करके हमें

निकाला गया है। उस समय मालिक हमें प्रलोभन देकर अपना कार्य कराना चाहता था, किन्तु हमलोगोंने ऐसा नहीं किया। आज उसीका फल है, कि हमलोग अपनी जीविकासे हाथ धो बैठे और तुम लोग इस ओर ध्यान नही देते। धीरे-धीरे मजदूरोंके हृदय पर उनकी बातोंका बड़ा असर हुआ। वे लोग आपसमें सम्मति कर पुन• हड़ताल करनेको तैयार होगये। एक-एक कर उन मजदूरों और क्लार्कों के हटानेसे शेष मजदूरोंके अगुओंके हृदयमें भी आशङ्का बनी थी, कि किसी न किसी दिन हमलोगोंको भी यह अवश्य हटावेगा। साथ ही मजदूरोंपर भी अधिक कड़ाई होने लगी। एकाध घण्टेकी भी देर होनेसे झट जुर्माना होने लग गया। बोनस प्रभृतिमें भी बखेड़े होने लगे। यद्यपि महावीर बाबू के पास कईबार उन लोगोंने निवेदन किया, किन्तु उन्होंने इस ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। 'जो मैनेजर साहब करते हैं वही ठीक है, यही कहकर उन्हें लौटा देते थे। मैनेजर साहब को भी मनमानी करनेका अच्छा मौका मिला। महावीर बाबू भी अपनेको लक्ष्मी-दास समझ पैसे मदसे चूर रहने लगे, कि अपने कामोंकी भी देखभाल नहीं कर सकते थे। अब वे अधिक आरामतलब हो गये थे। प्राय दिन-रातका अधिक समय अन्त पुरमें प्रेमाके साथ प्रेमालापमें ही व्यतीत होता था। ताश-शतरञ्जके खेल ही होते रहते थे। प्रेमाका स्वभाव भी बिलकुल बदल गया था। अब ... [illegible] सर मुँह हँसने-



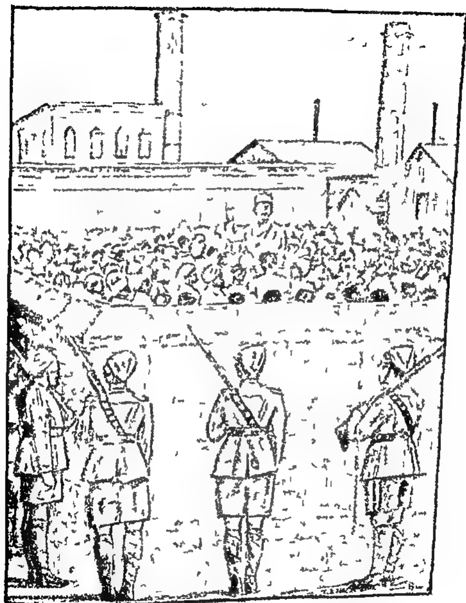
बोलनेमें भी अपना अपमान समझती थी। उसके स्वभावमें विचित्र परिवर्तन देख, जगतपुरकी स्त्रियाँ परोक्षमें उसकी तीव्र निन्दा किया करती थीं। यद्यपि किसी न किसी प्रकार प्रेमाको भी इन सब बातोंका पता लग जाता था, किन्तु उसकी उसे कुछ पर्वाह नहीं थी, बल्कि वह उलटे उनपर बिगड़ती और कभी न कभी उसका बदला लिये बिना नही रहती थी। महावीर बाबू धन-मदसे ऐसे मदान्ध हो गये कि उनको कर्तव्याकर्तव्यका ध्यान ही नहीं रहा।



पन्द्रहवां परिच्छेद

कार्तिकका महीना था। शुक्लपक्षकी रात थी। निर्मल चन्द्रिका छिटकी हुई थी। रातके साढे नौ बज रहे थे। नगरमें धीरे-धीरे सन्नाटा छा रहा था। सभी बडे-छोटे लोग भोजनादिके प्रबन्धमें लगे थे। कोई-कोई भोजनोपरान्त घरमें चारपाईपर लेटे निद्रादेवीके आह्वानमें लगे थे। किसी-किसी घरमें तो बिल्कुल सन्नाटा छाचुका था। लोग बहुत पहले ही सो गये थे। किन्तु किसी-किसी घरमें अभी रसोई भी नहीं हो पायी है। इसी समय एक साधारण दोमञ्जिले मकानके एक कमरेमें धीमे प्रकाशके साथ लालटेन जल रही थी, कमरेमें एक बडासा पलङ्ग बिछा था, जिसपर एक युवती लेटी लेटी एक पुस्तक पढ रही थी। युवती पुस्तक पढते ही पढते सोगयी। धीरे-धीरे दासीने आकर लालटेन बुझाकर भीतरसे किवाड बन्द कर दिये, परन्तु ब्योडा नहीं लगाया। पलङ्गपर सोयी हुई युवतीके मुखचन्द्रपर गवाक्षसे कलाधरकी स्वच्छ किरणें आकर अठखेलियां करती थीं। युवतीके मुख-मण्डलपर काले-काले केशोंकी लटें, बिखरी हुई उसकी शोभाको और भी बढा रही थीं। इसी समय बाहरसे किसीने 'ठाकुर', 'ठाकुर' की आवाज़ [illegible] नीचेकी कोठरीमें

अवश्य करती थी। हेमाकी सरलतापर रघुवीर बाबू उसपर विशेष प्रसन्न रहा करते थे। और इसी कारण प्रतिदिनकी वकालतसे जो कुछ प्राप्ति होती, हेमाको सौंप देते थे। हेमा उसको इस प्रकार व्यवहारमें लाती, कि थोडी आमदनीके समय भी घरका खर्च कर उसमेंसे कुछ न कुछ बच ही जाया करता था, इसी प्रकार आनन्द-पूर्वक उनके दिवस व्यतीत होने लगे। एक दिन कचहरीसे लौट आनेपर रघुवीर बाबूने हेमासे कहा कि आजके "सर्चलाइट"में भैयाकी मिलमें बडी भारी हडताल होनेकी बात निकली है, यद्यपि इसके प्रथम भी दो-एक हडतालें हो चुकी हैं, किन्तु इसबार की हड़ताल बड़ी भीषण है, सैनिकोंका मिलके दरवाजे पर कडा पहरा है। इधर मजदूरोंकी भी सभाएँ हो रही हैं। मजदूरोंने अच्छे-अच्छे नेताओंको भी बाहरसे बुलवाया है, देखें दोनोंमें समझौता होता है या नहीं। मिलके मैनेजरकी बडी शिकायत निकली है। साथ ही साथ भैयाकी भी कुछ कम शिकायत नही है। पतिके मुखसे मिलकी हडतालकी बातें सुनते ही हेमा बोली,—"अच्छा ही हुआ है, मजदूरोंपर उनलोगोंका अत्याचार भी बहुत अधिक हुआ करता है। यद्यपि आजके समाचारसे जो मैंने "पाटलिपुत्र"में पढा है, उन मजदूरोंका भी दोष झलकता है, किन्तु तोभी वे उतने दोषी नहीं हैं, उन्होंने



मिलमें भीषण हड़ताल

सैनिकोंका मिलके दरवाजेपर कड़ा पहरा।

मजदूरोंकी विराट सभामें नेता लोग व्याख्यान दे रहे हैं

ही चली आरही है कि—"मजदूरी बढा दे", देश भीषण अकालके चङ्गुलमें फँसा है, ऐसे समय उतनी कम मजदूरीसे उनका निर्वाह कैसे हो सकता है, यदि इसीलिये उन्होंने प्रार्थना की, तो कौनसा भारी अपराध किया ?"

रघुवीर—"हाँ, बात तो इतनी ही थी, इसको लोगोंने व्यर्थ ही बढाकर तिलका ताड और राईका पहाड कर दिया।

हेमा—इसमें किसका दोष है ?

रघुवीर—और किसका दोष है ? सब दोष तुम्हारी प्रेमा दीदी का है।

हेमा—(मुसकुराती हुई) और आपके बडे भैया बिल्कुल पाक-साफ हैं ?

रघुवीर—"अब वे भी तो उसीके हाथ बिक गये हैं। तुम्हारी दीदी जिधर चाहती हैं, उधर ही उनको घुमाती हैं।

हेमा—यह भी तो उन्हींका दोष है, वे उसेही अपनी ज्ञान दाली और पथप्रदर्शिका क्यों समझे बैठे हैं ? यदि उसके कार्यमें भूल होती है, तो वे उसे सुधारते क्यों नहीं ?

रघुवीर—अच्छा, लो, तुम्हारी ही जीत हुई। यहाँ भी तो तुम्हारी दीदी ही विजय पाती हैं।

हेमा—यह अदालतकी बहस नहीं है, कि झूठी सच्ची बातें बनाते गये। यहाँ सच्ची बातें माननीही पडती हैं, इसमें हमारी जीत कैसी ?



रघुवीर—(हँसते हुए) हाँ, मैंने समझा कि तुम वकीलों से बढ़ी-चढ़ी हो।

"यदि मैं वकील होती, तो आपलोगोंका मुँह वहाँ भी बन्द ही कर देती" कहकर हेमा खिलखिलाती हुई हँस पड़ी।

रघुवीर बाबू हेमाकी युक्तिपूर्ण बातें सुनकर बोले, "वहाँ नहीं सही, यहीं सही। यदि वहाँतक भी बढ़नेकी इच्छा होती है, तो वकालत पढ़ लो।"

हेमा—आप मुझे पढ़ाना कबूल करें, तो आजहीसे पढ़ना आरम्भ कर दूँगी।

रघुवीर—तुम्हें पढ़ानेके लिये मैं अपने एक मित्रको, जो अभी ला-प्रोफेसर भी हैं, नियुक्त कर दूँगा। कहो, कबसे पढ़ना आरम्भ करती हो?

हेमा—(हँसती हुई) क्या आप मुझे नहीं पढ़ा सकेंगे?

रघुवीर—नहीं।

"तब मैं आपके मित्रसे भी नहीं पढ़ूँगी" कहकर हेमा पुनः हँसपड़ी। रघुवीर बाबू भी हँसते हुए बोले, "खैर, यह सब हँसी-दिल्लगी तो होती ही रहेगी। अब तुमसे एक सम्मति पूछता हूँ। वह यह, कि ऐसी विपत्तिके समय मेरा क्या कर्त्तव्य है? मैं बिना बुलाये भी उनकी सहायता करने जाऊँ या नहीं?"

हेमा—जाना तो चाहिये अवश्य, किन्तु जब वे नहीं बुलाते हैं, तो आप जायेंगे कैसे? फिर जाकर ही आप क्या करेंगे? यदि वे आपका कुछ कहना मानें तब तो?

रघुवीर—मैं समझता हूँ कि जब मजदूरोंकी ओरसे नेता लोग आये हुए हैं, तब तो वे लोग अवश्य झगड़ा निपटा नेका यत्न करते होंगे। ऐसी अवस्थामें मेरा वहाँ जाना कुछ बुरा न होगा। मैं भी दोनोंको मिला देनेहीकी चेष्टा करूँगा।

हेमा—अच्छा होता, कि बाबूजीसे भी सम्मति ले लेते।

रघुवीर—बाबूजीसे पूछ चुका हूँ, वे जानेहीके पक्षमें हैं और आप भी चलनेकी इच्छा प्रकट करते हैं। उनका जाना भी अच्छा ही होगा।

हेमा—"जानेकी इच्छा तो मेरी भी होती है—किन्तु दीदीका तिरस्कार स्मरण कर पाँव आगे बढ़नेको नहीं कहता। खैर, आप चलें, मैं भी चलूँगी। वहाँ नहीं जाकर अपने पिताके घर जाकर रहूँगी। क्योंकि यहां अकेले कई दिनोंतक जी नहीं लगेगा।

रघुवीर—मेरी इच्छा होती है कि जवाबी तार देकर मैं भैयासे पूछलूँ, कि वे क्या कहते हैं? यदि आनेको कहेंगे तो चलूँगा, अन्यथा नहीं।

हेमा—मैं भी यही उचित समझती हूँ।

रघुवीर बाबूने भाईको तार भेजनेकी इच्छा प्रकट करके अपने ठाकुरको बुलाकर कहा, कि तारका फार्म ले आओ। लेकिन न जाने क्यो, फिर उसे मनाकर, ब्यालू करके, सायकिल लिये, आपही स्टेशनकी ओर चले गये। इधर हेमाने भी समझ लिया कि अब संभवतः हमलोगोंका वहाँ जाना भी एकतरहसे निश्चय

ही हो गया, अतएव वहाँ लेजानेकी आवश्यक चीजें अलग निकालकर बंधवाने लगी और सब चीजोंको भी यथास्थान सुरक्षित रख, घर चलनेका तैयारी करने लगी। यद्यपि उसको विश्वास था, कि मैं वहाँ अधिक समयतक नही रह सकूँगी, किन्तु तो भी उतनी चीजें उसने साथ ले चलनेका विचार किया, जितनी अधिक समयके लिये काफी होतीं।



सोलहवां परिच्छेद



रूपवतीने पत्र पढ़कर अपने पतिदेव बाबू ललिताप्रसादसे कहा,—"आप अब निश्चिन्त रहें, किन्तु आज्ञा दें कि मैं सुरेन्द्र या उपेन्द्र (अपने पुत्र) को एकदिन भरतपुर भेज दूँ। क्योंकि उत्तराको वहाँ जाकर ले आना अच्छा होगा और साथ ही विश्वनाथको भी कह सुनकर दो चार दिवसके लिये ले आयेगा।"

ललिताप्रसाद—"परीक्षाका दिन निकट है, ऐसे समयमें लड़कोंको एक दिन भी कालेजसे अलग करना अच्छा नहीं। यदि कहो, तो मैं ही एकदिनकी छुट्टी लेकर उन सबोंको ले आऊँ।

रूपवती—यदि आप कष्ट स्वीकार करें तो सबसे अच्छा है, किन्तु आपके जानेसे घरका कार्य कैसे चलेगा? क्योंकि एक दिनकी जगह दो दिनका विलम्ब हो गया, तो महीना भी पूरा हो रहा है, ग्वालिन, मेहतरानी और धोबिनका तप आरम्भ हो जायगा। फिर उनके लिये कुछ प्रबन्ध भी पड़ेगा। उत्तराके लड़केको भी कुछ देना पड़ेगा। यदि चले आयेंगे, तो यह सब चुकावेगा

ललितप्रसाद—इसकी चिन्ता तुम मत करो ; मैं आजही सब प्रवन्ध किये देता हूँ। जबतक हाथमें कलम है, तबतक व्यर्थ ही चिन्ता करती हो। हाँ, जब हाथमें कलम नहीं रहेगी तो ऐसा कहना।

रूपवती—लेकिन उस समयके लिये भी आपको अभीसे चिन्ता करनी चाहिये। क्योंकि वह समय भी दूर नहीं है।

ललिता०—तुम भूलती हो। मैं क्या बेकार बैठा हूँ? सुरेन्द्र और उपेन्द्र किस दिनके लिये हैं? क्या वे उस समय काम नहीं देंगे?

पतिकी बातें सुन रूपवती चुप हो गयी। ज्यों ज्यों उत्तराके आनेका दिन निकट आने लगा, त्यों-त्यों उसका हृदय उससे मिलनेको उछलने लगा। सुरेन्द्र और उपेन्द्रको भी इन शुभ समाचारसे बडी प्रसन्नता हुई। यों तो समय-समयपर उत्तरा और विश्वनाथका पत्र इन लोगोंके पास आता ही था। समाचार-पत्रोंमें बहिन-बहनोईके आदर्श चरित्रको पढकर वे लोग अपनेको भी कम सौभाग्यशाली नहीं समझते थे, उनसे मिलनेके लिये कईबार माता पितासे आज्ञा भी माँगी थी, किन्तु माताकी आज्ञा मिलनेपर भी पिताकी आज्ञा न पाकर वे उनके घरतक नहीं जासके थे। आज उनके आनेकी बात सुनकर उनको कितना आनन्द हुआ होगा, यह सहज ही अनुमानगम्य है।

यथासमय, अवकाश लेकर ललितप्रसाद उत्तरा और

विश्वनाथको अपने यहाँ ले आये। मदन और महादेव भी उनके साथ आये। कन्या और जामाताको पाकर रूपवती स्वर्गीय सुख प्राप्त करने लगी। सुरेन्द्र और उपेन्द्रको भी इस सुखद सम्मेलनसे अपार आनन्द हुआ। उसके कई मित्र भी विश्वनाथसे आकर मिले। उस समय ललिता बाबूके घरमें उन सबोंके मिलनका आनन्द स्रोतसा प्रवाहित हो रहा था। सब तो प्रसन्न थे, किन्तु रूपवती, पुत्री और जामाताके वेशको देख कर बड़ी चिन्तिता थी। जिसके कोमल शरीरको सुन्दर बहुमूल्य वस्त्रोंसे सुशोभित करके, वह कुछ दिन पहले आनन्दित रहा करती थी, आज उसकी देहपर स्वदेशी गाढेका वस्त्र देखती है। जिसको कभी उसने अपने हाथों अपनी धोती नहीं धोने दी थी, आज उसके हाथमें चरखेकी ठेठे (छाले) देखती है। कुछ दिन पहले, जिस विश्वनाथके खिलते हुए कोमल शरीरको देखकर वह प्रसन्न होती थी, आज उसीको एक साधारण कृषक जैसा मोटा-भद्दा वस्त्र पहने, दुर्बलकाय देखकर अपार कष्ट पाती है। उन सबोंकी ऐसी अवस्था देख रूपवतीने उनके लिये अच्छे वस्त्रादि मँगवाकर उन्हें दिये। वह समझती थी, कि उनकी आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं है। विश्वनाथपर बराबर शत्रुओंने मुकद्दमा ही चलाया। इसी-लिये इस अवस्थामें हैं और इसी विचारसे उसने वस्त्रादि मँगवाये थे। ज्योंही नवीन वस्त्र रूपवतीने उत्तराके आगे रखा, त्योंही वह मुँह बनाकर बोली—"माताजी, तु"


व्यर्थका कष्ट क्यों उठाया? ईश्वरने मेरे लिये इन वस्त्रोंको नहीं बनाया। मेरे कामके येही मेरे मोटे पवित्र वस्त्र हैं, और इन्हीको व्यवहारमें लाकर मै प्रसन्न रहा करती हूँ। क्योंकि ये मेरे परिश्रमके फल-स्वरूप हैं और इन्हें मैं सदा काममें नहीं ला सकती, क्यों कि इस प्रकारके अपव्ययके लिये मेरे पास धनही कहाँ है? फिर तुमही इसको क्यों काममें लाती हो? क्यों अपने घरकी बनी हुई चीजोंको व्यवहारमें नही लातीं?"

उत्तराकी बाते सुनतेही रूपवती चुप हो गयी। यद्यपि उसकी इच्छा थी, कि इस विषयको लेकर कुछ समयतक उससे बाते' करू, तथापि न मालूम उस समय, क्यों रुकगयी। उत्तरामें विचित्र प्रकारका परिवर्तन देख कर रूपवती मन ही मन दुःखी थी। सुरेन्द्र और उपेन्द्र अपनी बहिन उत्तराकी बड़ी प्रशंसा करते थे और वे लोग चाहते थे, कि हमलोग भी देशका कुछ कार्य करे, हमलोगोंसे बढकर तो हमारी बहिन ही बहुत कुछ करती है। दोनो बन्धुओंने भी आपसमें परामर्श करके निश्चय कर लिया, कि आज से हमलोग अपने देशकी ही वस्तुओंका व्यवहार करेगे। विश्वनाथ बाबूको पटना आये सिर्फ पाँचही दिन हो पाये थे, कि इधर उधर कई जगहोंसे उनकी बुलाहट आने लगी। कई जगहोंसे तार आया। कई जगहोंसे कई आदमी उन्हें बुलाने आये। दिनमें उनको पास भीड़ लगी रहती थी। यह देख ललिता प्रसादजी बहुत घबराये। उनको भय हुआ, कि कहीं कोई भेदिया पुलिस झूठी-बातोंके

भ्रममें पड़ कर जिलाधीशके पास मेरी शिकायत न कर दे और ऐसा होने ही से मेरी नौकरी चली जायगी। अस्तु। जहाँतक शीघ्र हो सके, विश्वनाथको यहाँसे विदा करही देना अच्छा है। इसी प्रकार सोच विचार कर ललिताप्रसाद जीने जामाताको विदा करनेका विचार स्थिर कर लिया।

इधर सुरेन्द्र और उपेन्द्रने अलग ही विचार कर लिया था, कि मास्टर साहबको (वे लोग विश्वनाथ बाबूको मास्टर साहब ही कहा करते थे) कुछ दिन यहीं रख कर, एक-दो सभाओंमें उनका व्याख्यान करायेंगे। समय पाकर सुरेन्द्रने अपने पितासे अनुमति माँगी। ललिता बाबू यद्यपि इस कार्यको बुरा नहीं समझते थे, तथापि गुलामीके बन्धनमें जकड़े रहनेके कारण बहुत डरतेथे। अपने सामने विकट समस्या उपस्थित देख कर कुछ देर चुप रहनेके बाद वे बोले "सुरेन्द्र, यद्यपि मैं इसको अन्तःकरणसे अच्छा समझता हूँ, किन्तु मैं सरकारी नौकर ठहरा, कितने शत्रुओंको अवसर मिल जायगा। वे मेरे अफसरोंके निकट मेरी भरपूर निन्दा करेंगे। परिणाम उसका यही होगा, कि इस वृद्धावस्थामें मैं नौकरीसे हटाया जाऊँगा।"

सुरेन्द्र—पिताजी, आप इस प्रकार झूठी शिकायत करने वालोंसे क्यों डरते हैं? जो व्यक्ति निर्दोष है यदि उसकी कोई शिकायत ही करने चले, तो उससे क्या होना है? और इससे आपकी नौकरी क्यों जायेगी?

ललिता०—अभी तुम लड़के हो, तुममे बिल्कुल लडकपन भरा हुआ है। तुम इन सासारिक बातोंको अभी नहीं समझते, यह समय बडा नाजुक है। ऐसे समयमें सत्यका झूठ और झूठका सत्य हुआ ही करता है। और उसमें भी राजनीतिक शिकायतें तो आँख और कान बन्द करके देखी और सुनी जाती हैं। और भेदिया पुलिसकी बातोंको तो वेद-वाक्य ही समझा जाता है।

सुरेन्द्र—जहाँ ऐसा अन्धेर है, यदि आप वहाँ नौकरी नही करेंगे तो क्या हर्ज है?

ललिता०—तुम क्या समझोगे, कि क्या हर्ज है? यदि मेरी नौकरी नहीं रहती तो, मैं अबतक क्या कर सकता था? पिताजी का अर्जित स्थायी धन भी तो मेरे पास कुछ नहीं था, कि तुम लोगोंका पालन-पोषण कर सकता। परिवारका भरण-पोषण करनेमे भी बडी कठिनता होती है।

सुरेन्द्र—जिसको नौकरी नहीं है और स्थायी पैतृक सम्पत्ति भी नही है, क्या संसारमें उसका जीवन सुखपूर्वक नही व्यतीत होता?

ललिता०—जीवन-निर्वाह तो अवश्य होता है, किन्तु सच पूछो तो सुखसे नही।

सुरेन्द्र—आपही कहें, कि गुलामीसे बढ़ कर ससारमें कौन सा बडा कष्ट होगा?

ललिता०—अच्छे पण्डितसे विवाद आरम्भ हुआ! तुम



मेरी आज्ञा मानोगे या नहीं ? मैं बकवाद करना नहीं चाहता।

सुरेन्द्र—आपकी आज्ञा मानूँगा। आप नाराज़ न हों। आपसे नहीं तो किससे मैं ये सब बातें जान सकूँगा ?

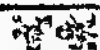
ललिता प्रसाद—यों तो तुम एक नहीं, अनेक बार प्रश्न कर सकते हो, किन्तु इसप्रकार मनमानी करनेकी इच्छा रखकर बिना मतलबकी बातें किया करोगे, तो मैं उसे कभी अच्छा नहीं समझता।

सुरेन्द्र—"मेरी अज्ञानतासे पद-पदपर भूल होनेकी सम्भावना है। यदि इस समय भी कोई अपराध होगया हो तो क्षमा करें", इतना कह, नतमस्तक हो, पिताके आगे खड़ा हो गया। ललिताप्रसाद भी चिन्तित होकर वहांसे चलते बने। उसी दिनसे सुरेन्द्र और उपेन्द्रका मन पढने-लिखनेकी ओरसे बिल्कुल उचट गया। किन्तु तो भी पिताको प्रसन्न रखनेके लिये उन्होंने अपना लिखना पढना अवश्य जारी रखा। पिताकी आज्ञाका उल्लंघन करनेका साहस उनमें नहीं था और वे इसको कर्तव्य भी नहीं समझते थे। इसीलिये, इच्छा होनेपर भी उन्होंने पिताकी अनुमति न पाकर विश्वनाथ बाबूसे किसी सभामें व्याख्यान दिलानेका आग्रह नहीं किया और न उनको अपने यहाँ बहुत दिन रख ही सके। विश्वनाथ बाबूको ललिता बाबूकी बातें किसी न किसी प्रकार ज्ञात होही गयीं। अतएव उन्होंने भी अधिक समयतक वहाँ रहना उचित नहीं समझा। एक सप्ताहके बाद ही पुत्र कलत्र, मदन और चेतनके साथ, अपने घर,

भरतपुरको, वापस लौट आये। उत्तरा भरतपुर पहुँचकर अपने कार्यमें लगी और विश्वनाथ बाबू कुछ दिनोंके लिये बाहर निकले, क्योंकि कई जगहोंकी सभाओंसे लोग उन्हें बुलाने आये थे। मदन और चेतनदास अपने-अपने पाठ-अभ्यास करनेमें प्रवृत्त हुए।

यद्यपि भरतपुरमें जमीन्दारके गुमास्तेकी ओरसे अब किसी प्रकारके अत्याचार नहीं होने पाते थे, तथापि उन अमलोंका हृदय अभीतक शुद्ध नहीं होने पाया था। वे प्रत्यक्षमें तो बिल्कुल चुप थे, लेकिन अभीतक हृदयसे ग्रामीणोंका अनिष्ट करनेपर तुले हुए थे। भरतपुरवालोंने अपने यहाँ एक "सेवा-समिति" स्थापित की थी, जो समय समयपर मेले ठेलेके समय स्वयंसेवकोंके द्वारा लोगोंकी सेवा करती थी, जिसके नायक वही विश्वनाथ बाबू थे। इस सेवासमितिके स्थापनसे पुलिसको जनताकी रक्षामें अधिक सहायता मिलती थी। अब उसको किसी बड़े छोटे मेलेमें उतना कष्ट नहीं उठाना पड़ता था। इस सत्कार्यसे उसको समितिका कृतज्ञ होना चाहिये था, लेकिन वह उलटे उसको अपनी क्रोधाग्निसे भस्मीभूत करने लिये पागल हो रही थी। और ऐसा करनेका एक कारण भी था। वह यह कि, अब उसको जेब नहीं भरने पाती थी। भले भले लोगोंपर आपना प्रभाव डालकर अब पुलिसके लोग कुछ ऐंठ नहीं सकते थे। आपसमें इस प्रकारका मनोमालिन्य बढ़ते देख कर विश्वनाथ बाबूने इसको शान्त करनेकी एक युक्ति

निकाली। अन्तमें पुलिस सबइन्सपेक्टरसे मिलकर इसका एक उपाय सोच निकाला गया, कि "सेवा समिति" पर दोनों दलवाले विश्वास रख कर कुछ दिन उसके कार्यको देख भाल करें। यदि यथार्थमें उसके द्वारा जनताकी कुछ भी सेवा होती हो और किसी प्रकारकी अशान्तिकी आशंका न हो, तो फिर दोनों ही की देखभालमें सेवासमिति अपनी सेवाका पवित्र कार्य करती रहे। यद्यपि वहाँकी पुलिसकी सम्मति ऐसी नहीं थी, तथापि वहाँके पुलिस-सबइन्सपेक्टरके सद्विचारके आगे उन्हें भी सिर झुकाना ही पड़ा। दोनों पक्षोंका मनोमालिन्य दूर हो गया। दोनों ही एक दूसरेको अपना सहायक समझने लगे और उसीके अनुसार अपने-अपने कर्तव्य का पालन करते रहे। फिर कभी भरतपुरवालोंके साथ किसी प्रकारका बखेड़ा नहीं हुआ। वहाँके जमीन्दार बाबू अनर्थसिंहने भी उन लोगोंके साथ फिर कभी किसी प्रकारका झगड़ा नहीं खड़ा किया। सर्वदा सद्भाव ही से काम लेने और प्रेम दिखाते रहे। प्रजाओंने भी फिर कभी किसी प्रकारसे उनके साथ अनधिकार चेष्टा नहीं की। जब राजा प्रजामें यह पारस्परिक प्रेम उत्तरोत्तर बढ़ने लगा, तब बेचारे थमले झख मार कर प्रजाओंसे मिलकर रहने लगे। विश्वनाथकी यह सुकीर्त्ति चारों ओर फैल गयी। अब वे भी आनन्द पूर्वक अपने कार्य-सम्पादनमें व्यस्त रहने लगे।



भरतपुरको, वापस लौट आये। उत्तरा भरतपुर पहुँचकर अपने कार्यमें लगी और विश्वनाथ बाबू कुछ दिनोंके लिये बाहर निकले, क्योंकि कई जगहोंकी सभाओंसे लोग उन्हे बुलाने आये थे। मदन और चेतनदास अपने-अपने पाठ-अभ्यास करनेमें प्रवृत्त हुए।

यद्यपि भरतपुरमें ज़मीन्दारके गुमास्तेकी ओरसे अब किसी प्रकारके अत्याचार नही होने पाते थे, तथापि उन अमलोंका हृदय अभीतक शुद्ध नही होने पाया था। वे प्रत्यक्षमें तो बिल्कुल चुप थे, लेकिन अभीतक हृदयसे ग्रामीणोंका अनिष्ट करनेपर तुले हुए थे। भरतपुरवालोंने अपने यहाँ एक "सेवा-समिति" स्थापित की थी, जो समय समयपर मेले ठेलेके समय स्वयंसेवकोंके द्वारा लोगोंकी सेवा करती थी, जिसके नायक वही विश्वनाथ बाबू थे। इस सेवासमितिके स्थापनसे पुलिसको जनताकी रक्षामें अधिक सहायता मिलती थी। अब उसको किसी बड़े-छोटे मेलेमें उतना कष्ट नही उठाना पड़ता था। इस सत्कार्यसे उसको समितिका कृतज्ञ होना चाहिये था, लेकिन वह उलटे उसको अपनी क्रोधाग्निसे भस्मीभूत करने लिये पागल हो रही थी। और ऐसा करनेका एक कारण भी था। वह यह कि, अब उसको जेब नहीं भरने पाती थी। भले भले लोगोंपर आपना प्रभाव डालकर अब पुलिसके लोग कुछ ऐंठ नहीं सकते थे। आपसमे इस प्रकारका मनोमालिन्य बढ़ते देख कर विश्वनाथ बाबूने इसको शान्त करनेकी एक युक्ति



निकाली। अन्तमें पुलिस सबइन्सपेक्टरसे मिलकर इसका एक उपाय सोच निकाला गया, कि "सेवा समिति' पर दोनों दलवाले विश्वास रख कर कुछ दिन उसके कार्यकी देख भाल करें। यदि यथार्थमें उसके द्वारा जनताकी कुछ भी सेवा होती हो और किसी प्रकारकी अशांतिकी आशंका न हो, तो फिर दोनों ही की देखभालमें सेवासमिति अपनी सेवाका पवित्र कार्य करती रहे। यद्यपि वहाँकी पुलिसकी सम्मति ऐसी नहीं थी, तथापि वहाँके पुलिस-सबइन्सपेक्टरके सद्विचारके आगे उन्हें भी सिर झुकाना ही पड़ा। दोनों पक्षोंका मनोमालिन्य दूर हो गया। दोनों ही एक दूसरेको अपना सहायक समझने लगे और उसीके अनुसार अपने-अपने कर्तव्यका पालन करते रहे। फिर कभी भरतपुरवालोंके साथ किसी प्रकारका बखेड़ा नहीं हुआ। वहाँके जमीन्दार बाबू अनर्थसिंहने भी उन लोगोंके साथ फिर कभी किसी प्रकारका झगड़ा नहीं खड़ा किया। सर्वदा सद्भाव ही से काम लेते और प्रेम दिखाते रहे। प्रजाओंने भी फिर कभी किसी प्रकारसे उनके साथ अनधिकार चेष्टा नहीं की। जब राजा-प्रजामें यह पारस्परिक प्रेम उत्तरोत्तर बढ़ने लगा, तब बेचारे अमले झख मार कर प्रजाओंसे मिलकर रहने लगे। विश्वनाथकी यह सुकीर्ति चारों ओर फैल गयी। अब वे भी आनन्द पूर्वक अपने कार्य-सम्पादनमें व्यस्त रहने लगे।

सतरहवाँ परिच्छेद

बाबू महावीरप्रसाद जी समझे बैठे थे, कि मजदूरोंको भड़कानेवाले क्लार्कों और उनके अगुओंको निकाल देनेसे ही मिलमें शांतिका साम्राज्य स्थापित हो जायगा, किन्तु ऐसा करनेपर भी ठीक इसके विपरीत हुआ। जिस दिन रामभरोसे बिना अपराध निकाला गया, उसी दिनसे लोगोंमें काना फूसी होने लगी और ज्यों ज्यों एकके बाद-दूसरे क्लार्क और मजदूर हटाये जाने लगे, त्यों-त्यों उन मजदूरोंमें पुनः सनसनी फैलने लगी। उधर रामभरोसे उन मजदूरोंको भड़का ही रहा था। बस, फिर क्या था? थोड़े ही दिनोंके बाद एक भारी हड़ताल हुई। किन्तु इस बार मैनेजर साहबने अपनी मिलके कुछ मजदूरोंको प्रलोभन देकर अपनी ओर मिला रखा था, जिससे मिलका कार्य बन्द नहीं हुआ। जिन मजदूरोंने हड़ताल की थी, उनकी संख्या अधिक थी। उन्होंने हड़तालियों की एक सभा संगठित की। उस सभाने उन मजदूर भाइयोंको भी, जिन्होंने हड़ताल नहीं की थी, हड़ताल करनेको बाध्य किया। इस कारण दोनों दलोंमें विशेष खींचातानी और अनबन हो गयी। अपनी संख्या कम रहनेसे मिलके मजदूरों

को हडताल करनी पडी। मिलके मैनेजर साहबने पुन उनको प्रलोभन देकर बलपूर्वक काम पर बुलानेका यत्न किया, इसीपर बात कुछ बढ गयी। दो एक मजदूरों पर मैनेजरने हाथ भी छोड दिया। उसका बदला मैनेजर साहबसे सूदके साथ वसूल किया गया। महावीर बाबूको ज्योंही यह समाचार मिला, त्योंही वे बहुत घबड़ाये। सरकारसे अपनी रक्षाके लिये महावीर-बाबूने कुछ सशस्त्र सेना मँगवायी। उधर मज़दूरोंने भी अपनी सभाका कार्य शुरू किया। एक दिन मजदूरोंकी सभामें फिर मैनेजरने कुछ छेड-छाड की। दोनों ओर से गुत्थमगुत्थी होनेको थी, कि सभा स्थलपर बाबू महावीरप्रसादके अनुज बाबू रघुवीर-प्रसाद जी दो-तीन नेताओंके साथ पहुँच गये। उनको बीचमें आता देख, दोनों ओरके लोगोंने अपना अपना हाथ रोक लिया। बाबू रघुवीरप्रसादके उद्योगसे उस दिन वहाँ मज़दूरों और मिलके अन्यान्य कर्मचारियोंकी एक सभा हुई। सभामें बाबू महावीरप्रसाद जो भी सम्मिलित हुए। आये हुए नेताओंमें बाबू विश्वनाथप्रसाद जी भी शामिल थे। उनको कई मजदूरोने प्रार्थना करके घरसे बुलाया था। औरोंको रघुवीरप्रसाद भागलपुरसे लाये थे। सभामें अन्तिम भाषण विश्वनाथ बाबू का हुआ। न मालूम, उनके भाषणमें क्या जादू भरा हुआ था, कि श्रोताओ के हृदयपर उसका ऐसा प्रभाव पडा, कि सभी मजदूर मिल-मालिकसे बिना कुछ शर्त कराये ही हडताल बन्द कर काम करनेको उद्यत [illegible] गये। इधर

महावीर बाबूके हृदयपर भी व्याख्यानका ऐसा प्रभाव पड़ा, कि वे भी मजदूरोंके कष्टोंको दूरकर उनकी माँगोंको पूरा करनेपर राजी हो गये। सबमें पारस्परिक प्रेमकी जागृति हुई। सभा समाप्त होते ही हडताल बन्द हुई। सब अपने-अपने कार्यपर आ डटे। महावीर बाबू बड़े सम्मानके साथ बाहरसे आये हुए नेताओंको अपने यहाँ ले गये। यों तो विश्वनाथ बाबूके नामसे महावीर बाबू परिचित ही थे, किन्तु यह नहीं जानते थे, कि वे उदयभानु बाबूके अनुज हैं। ज्योंही उनको इसका पता लगा, त्योंही वे उनको छोटे भाईकी भाँति गले लगाकर अपना परिचय देते हुए, गायत्रीका स्मरण कर उठे। पीछे प्रेमा भी गायत्रीके देवर विश्वनाथजीसे आ मिली। महावीर बाबूने अपनी पहली कहानी (जिस प्रकार वे गायत्रीके कहनेसे नौकरी छोडकर इस कार्यमे प्रवृत्त हुए थे) कह सुनायी। उसी दिन अपने किये पर पश्चात्तापकर महावीर बाबूने रघुवीर बाबूको और प्रेमाने हेमाको हृदयसे लगाया और जीवनभर एक दूसरेपर विश्वास रखते और प्रेम करते रहे। मदन और महादेवको प्रेमाने बुलवाकर अपार आनन्द प्राप्त किया। मजदूरोंकी मजदूरी दूनी बढा दी गयी और सबको जगह देदी गयी। यह कार्य महावीर बाबूने अपनी इच्छासे कर दिया। अब मिलकी दिन दूनी उन्नति होने लगी।

रघुवीर बाबूको महावीर बाबूने तार देकर बुलाया था और हेमाको भी साथही लानेको कहा था। मिलकी हड़ताल

बन्द होनेपर रघुवीर बाबूने भाईसे भागलपुर लौट जानेकी आज्ञा माँगी, क्योंकि तमादीका समय निकट था। इस समय बाहर रहनेसे बड़ी आर्थिक हानि उठानी पड़ेगी। अनुजकी बातके उत्तरमें महावीर बाबूने कहा,—"अब तुमको वकालत करने की आवश्यकता नहीं; क्योंकि मैं अकेला सब कार्य नहीं सम्हाल सकता और स्वय देख-रेख नहीं करनेसे ही हड़ताल हुई थी। कर्मचारियोंका व्यवहार कुलियोंके साथ अच्छा नहीं होता। इसीसे वे लोग आपसमें लड़ते झगड़ते रहते हैं। मुझे आशा है, कि तुम्हारी देख रेखसे शान्ति रहेगी और उत्तरोत्तर उन्नति होती ही रहेगी।" रघुवीर बाबूने भ्राताकी आज्ञाका पालन कर वकालत छोड़ दी। हेमा भी अपनी बड़ी बहिन प्रेमाके कार्यों में सहायता पहुँचाने लगी और आनन्दपूर्वक जीवन यापन करने लगी।

सुरेन्द्र और उपेन्द्रने कालेजसे नाम कटा दिया। यद्यपि ललिता बाबूने दोनों पुत्रोंको पढ़ानेका बहुत यत्न किया, लेकिन कुछ फल नहीं हुआ। अन्तमें विवश होकर ललिताप्रसादने अपने दोनों पुत्रोंको घर छोड़ देनेके लिये बाध्य किया। बन्धु-द्वयने प्रसन्नतापूर्वक पिताकी आज्ञाका प्रतिपालन किया। ज्योंही उत्तराको यह समाचार मालूम हुआ, त्योंही उसने अपने दोनों अनुजोंको अपने यहाँ बुला लिया। विश्वनाथ बाबूने अपने दोनों शिष्योंकी सम्मति और ग्रामीण बन्धुओंकी सहायता से भरतपुरमें एक राष्ट्रीय विद्यालय [illegible] किया। [illegible]